



जगन्नाथदास 'रत्नाकर'  
कृत

# उद्व शतक

सम्पादक. डॉ. विजयेन्द्र रत्नाकर

कण्ठदर्प  
प्रकाशन

- १६८४  
विभा जन  
नई दिल्ली

द्वितीय संस्करण	अनकूट १६८६
प्रकाशक	श्रीमती विभा जन कल्प प्रकाशन २१ दरियागज, नई दिल्ली २
मूल्य	१२ ०० छात्र संस्करण ३० ०० सजिल्द
मुद्रक	नागरी प्रिंटस द्वारा ग्रन्थशिल्पी, दिल्ली 32

Udhav Shatak by Shri Jagannath Dass Ratnakar ' Ed by Prof  
Dr Vijyendra Snatak Published by Kandarp Prakashan,  
4662/21 Daryaganj New Delhi 2

## प्रकाशकीय निवेदन

आधुनिक ब्रजभाषा के मूधय कवि स्वर्गीय श्री जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' की कालजयी कृति 'उद्भव शतक' बीसवीं शताब्दी की अप्रतिम रचना है। ब्रजभाषा का स्थान आज यद्यपि खड़ी बोली ने ले लिया है किन्तु 'उद्भव शतक' अपनी सरल भाषा के लालित्य और लावण्य तथा भावसौन्दर्य के माधुर्य एवं मादकता के कारण हिन्दी काव्य जगत में पूर्ण सम्मान के साथ प्रतिष्ठित है। पठन-पाठन परम्परा में ही नहीं बरन कविता प्रेमी रसिक समाज में भी यह उत्तम कोटि की काव्य कृति के रूप में समादृत है।

'उद्भव शतक' का प्रथम संस्करण रत्नाकर जी के जीवन काल में बड़ी सज्ज के साथ रसिक समाज, प्रयाग से श्री रमाशंकर शुक्ल के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ था। इण्डियन प्रेस, प्रयाग प्रकाशक था। रसालजी ने बत्तीस पष्ठों की विद्वत्तापूर्ण भूमिका लिखी थी। उस समय उनकी भूमिका छात्रोपयोगी थी और उद्भव शतक के मम को उद्घाटन करने वाली थी। आज समीक्षा क्षेत्र का विस्तार हो गया है। कुछ ऐसे बिन्दु काव्यालोचन में उभरे हैं जो द्विवेदी-युगीन समालोचना में नहीं थे। अतः साठ वर्ष के बाद 'उद्भव शतक' को नई समीक्षा के आलोक में प्रकाशित करना हमें उचित प्रतीत हुआ।

'उद्भव-शतक' की आलोचना के लिए हमने सम्पादक महोदय से विस्तृत भूमिका लिखने का अनुरोध किया था। हमारे अनुरोध को स्वीकार कर उद्भव-शतक के मम को उद्घाटित करने वाली भूमिका लिखकर इस नव संपादित उद्भव-शतक को बीसवीं शती के अन्तिम चरण में पुनः पठनीय बना दिया है। ब्रजभाषा के साहित्यिक एवं आचलिक क्लिष्ट शब्दों के अर्थ भी पुस्तक के अन्त में द दिए गए हैं।

मैं अपनी प्रकाशन सस्या की ओर से विद्वान् सम्पादक श्रेष्ठेय प्रो० विजयदत्त स्नातक महोदय के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ। उन्होंने ब्रजभाषा की इस कालजयी कृति को पुनः लोकप्रिय बनाने में हमारा सहयोग किया है।



## अनुक्रम

१ कविवर रत्नाकर का जीवन-वृत्त	६
२ आधुनिक ब्रजभाषा काव्य और कविवर रत्नाकर	१४
३ भ्रमर गीत परम्परा और उद्भव-शतक	२०
४ उद्भव शतक की कथावस्तु	२६
५ उद्भव शतक में चरित्र-चित्रण	३५
६ उद्भव शतक में दार्शनिक विचार	४०
७ उद्भव शतक की भाषा	४५
८ उद्भव-शतक में रस योजना	५१
९ उद्भव शतक का काव्य रूप	५५
१० उद्भव शतक में अलंकार योजना	५८
११ आधुनिक युग में उद्भव-शतक की प्रासंगिकता	६४
१२ उद्भव शतक मूल पाठ	६७
१३ शब्दाप	१११



## कविवर रत्नाकर का जीवन-वृत्त

बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर के पूवज हरियाणा प्रान्त के पानीपत जिले के निवासी थे। पानीपत की प्रसिद्धि तो युद्धस्थली होने के कारण है किन्तु सफीदो गाव जहा रत्नाकर जी के पूवज रहत थे पौराणिक आख्यान से जुडा हुआ है। सफीदा की सपदमन का अपभ्रष्ट रूप कहा जाता है। जनमेजय ने सप कुल विनाश के लिए यही नागयज्ञ किया था। पानीपत के सफीदो गाव से इनके पूवज कब बाहर निकले और कहा-वहा जाकर बसे, इसका पूरा विवरण तो उपलब्ध नहीं है किन्तु पारिवारिक किम्बदन्तियों के अनुसार सम्राट अकबर के समय यह वैश्य परिवार दिल्ली आ गया और मुगल साम्राज्य में उच्च पदा पर काय करता रहा। मुगल साम्राज्य के पतन होने पर इस परिवार के लोग दिल्ली छोड़ कर लखनऊ आये। यहा पर भी इस परिवार के लोग धनी-मानी व्यक्तियों में गिने जाते थे। इस परिवार के पूवज सेठ तुलाराम धनधान्य सम्पन्न होने के साथ कुशल नीतिज्ञ तथा दानवीर के रूप में प्रसिद्ध थे। जहादार शाह के दरबार में सेठ तुलाराम का सम्मान था। जहादार शाह सेठ जी को यात्राओं में अपने साथ ले जाते थे और उह पूरा आदर देते थे। एक बार काशी यात्रा पर सेठ तुलाराम इनके साथ गंगा का मनोहर दृश्य देखकर इतने मुग्ध हुए कि शिवाला घाट पर मकान खरीदकर वही बस गए। उसी समय से यह वैश्य परिवार काशी वासी हो गया। आज भी इस वैश्य कुल का शिवाला में ही निवास है। व्यापार में लाभ होने पर सेठ तुलाराम तथा उनके पुत्र सगमलाल ने काशी में और भी मकान खरीद कर प्रचुर सम्पत्ति अर्जित कर ली थी। इस प्रकार रत्नाकर जी के प्रपितामह, पितामह और पिता वैभवशाली परिवार से संयुक्त रहे हैं। सेठ तुलाराम के पुत्र सेठ सगमलाल और सेठ सगमलाल के पुत्र पुरुषोत्तम दास और पुरुषोत्तम दास के पुत्र बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर हैं।

बाबू जगन्नाथदास का जन्म विक्रमी संवत् १६२३ (सन १८६६ ई०) की भाद्रपद शुक्ला पंचमी को काशी में हुआ। अपनी जन्म तिथि का सकेत रत्नाकरजी



ने स्वयं विहारी रत्नाकर की टीका ग्रंथ में लिखा है। जगन्नाथदास जिस कुल में उत्पन्न हुए थे, उसका चिरवालीन सम्बन्ध मुगल राज-दरवारा से रहा था। अतः फारसी का प्रचलन स्वभावतः इस परिवार में वशानुक्रम से घसा आ रहा था। शशव म जगन्नाथ दास को भी फारसी भाषा का अभ्यास कराया गया। फारसी उर्दू भाषा के अध्ययन से इन्हें भाषा का यह सस्कार सुलभ हो गया जो उन दिनों की व्यवहार की भाषा था। बचहरियों में उर्दू-फारसी का प्रयोग ज्यादा माना में होता था। स्कूली शिक्षा प्रारंभ होने पर गणित, अंग्रेजी, इतिहास आदि विषय पढ़ने का भीका मिला। मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद काशी के सुप्रसिद्ध कवीस कालेज में प्रवेश लिया और इसी कालेज से इंटरमीजिएट तथा बी० ए० परीक्षा १८६१ ई० में उत्तीर्ण की। उन दिनों बी० ए० तक पढ़ने वाले छात्र कम ही होते थे।

बाबू जगन्नाथदास को शशव स ही कविता करने का शौक था, उन्होंने उद्भव-शतक के निवेदन में लिखा है—'कविता में रुचि सड़कपन से ही थी। ४०-४५ वर्ष हुए जब मैंने दो एक कविता उद्भव सम्बन्धी बनाए थे। वे कई मित्रों और उस समय के कवियों को रुचिकर प्रतीत हुए। पूज्यपाद स्वर्गीय पिताजी ने भी उन पर प्रशंसा प्रकट की। इस प्रकार प्रोत्साहित होकर मैंने उद्भव विषयक ५७ कविता जोर बनाए और फिर यह विचार किया कि उद्भव शतक की रचना की जाय। विद्यार्थी जीवन में ही इन्होंने उर्दू फारसी के साथ हिन्दी में कविता लिखना प्रारंभ कर दिया था। उर्दू शायरी में इनका उपनाम 'जकी' था। उर्दू फारसी की शायरी के लिए य अपने उस्ताद मिर्जा मुहम्मद हसन फायज के प्रति ऋणी थे और उनका स्मरण बड़े सम्मान के साथ करते थे। इनकी मायता थी कि शायरी में इसलाह बहुत जरूरी है। और इसलाह के लिए कबिल उस्ताद का होना अनिवार्य है। बिना उस्ताद की इसलाह के शायरी लूनी लगडी रह जाती है। यह बात उन्होंने सन् १६२२ के बीसवें अखिल भारत वर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति भाषण में कही थी। 'उर्दू शायरी अच्छी होने का मुख्य कारण यह है कि उर्दू शायर बहुत दिनों तक उस्तादों से इसलाह लेते रहते हैं। जब वे कोई कविता बनाते हैं तो अपने गुरु के सामने सशोधनाय उपस्थित करते हैं। और जब तक गुरु की स्वीकृति नहीं मिलती, तब तक वे उस कविता को मुशायरा में नहीं पढ़ते।' बाबू जगन्नाथदास ने जब फारसी शायरी छोड़ कर हिन्दी में कविता लिखना शुरू किया तो स्वरचित छन्द के अपने मित्र मथुरा निवासी श्री नवनीतलाल चतुर्वेदी को दिखाते रहे। इसके साथ ही वे अपनी मित्र मडली में भी सुनाते थे ताकि उसके गुण दोष ज्ञात हो सकें। मित्रों द्वारा सुझाव गय परिवर्तन भी वे सह्य स्वीकार कर लेते थे।

जीविका और नौकरी बाबू जगन्नाथदास को सम्पन्न होते हुए भी दो स्थानों पर नौकरी करनी पड़ी थी। यद्यपि ये दोनों स्थान राजघरानों से सम्बन्ध रखते हैं, फिर भी नौकरी तो नौकरी ही है। वी० ए० पास करने के बाद कुछ वष तो साहित्यिक मनोविनोद में गुजार दिये किन्तु आठ-नौ वष साहित्य चर्चा करने के बाद जीविका की ओर उनका ध्यान गया। पहले एटा जिले की अवागढ रियासत में ट्रेजरी अफसर के पद पर आपकी नियुक्ति हुई। अवागढ छोटा सा एक कस्बा है। जलवायु की दृष्टि से वह बाबूजी को अनुकूल सिद्ध न हुआ। अतः दो वष बाद स्वयमेव त्यागपत्र देकर वहाँ से आ गये। काशी आने पर अयोध्या नरेश सर प्रताप नारायण सिंह ने इन्हे प्राइवेट सेक्रेटरी पद पर आमंत्रित किया। कुछ समय बाद इनकी काय कुशलता से प्रसन्न हो इन्हे अपने राज्य का मुख्य सचिव बना दिया। महाराजा की मृत्यु के बाद महारानी श्रीमती जगदम्बा देवी ने इन्हे अपना निजी सचिव बनाया। सन् १९२८ तक रत्नाकर जी इसी पद पर महारानी अयोध्या के पास काम करते रहे। महाराजा की मृत्यु के बाद अयोध्या में कुछ पट्टीदारों ने रियासत पर अधिकार करने का पढयत्र किया जिसे रत्नाकर जी ने अपनी सूझ-बूझ से विफल कर दिया। फौट में लम्बे मसों तक रियासत के अधिकार को लेकर मुकदमा भी चला जिसमें महारानी की जीत हुई। इस पढयत्र में रत्नाकर जी को बदनाम करने का भी प्रयत्न किया गया। महारानी के प्रिय पात्र होने से उन पर आक्षेप भी लगाये गये किन्तु वे झूठे साबित हुए और रत्नाकर जी निर्दोष एवं निष्कलक होकर सच्चे सेवक सिद्ध हुए। उस समय के फौजाबाद के अग्रेज कमिश्नर ने रत्नाकर जी के चरित्र एवं काय शली की मुक्त वठ से प्रशंसा की और इन्हे बहुत अच्छे प्रशंसा भरे प्रमाण पत्र दिये। सन् १९२८ में रत्नाकर जी का स्वास्थ्य गिरने लगा था और इनसे कठिन परिश्रम नहीं बन पड़ता था। अतः राज्य की सेवा से त्याग-पत्र देकर काशी आ गये।

अयोध्या में काय करत समय भी रत्नाकर जी की काय साधना निरन्तर अप्रतिहत गति से जारी थी। सन् १९२० में महारानी जगदम्बा देवी की प्रेरणा से इन्होंने 'गयावतरण' काव्य का प्रणयन किया। इसके साथ ही बिहारी सतसई पर यथा समय टीका लिखने का काय भी करते रहे जो १९२५ में पूरी हुई और 'बिहारी रत्नाकर' नाम से प्रकाशित हुई। ये दोनों पुस्तकें महारानी को समर्पित हैं।

रत्नाकर जी को अपने जीवन काल में यात्रा और देश-देशांतर भ्रमण का बहुत शौक था। सम्पूर्ण भारत का उन्होंने भ्रमण किया था। भारत के पवित्र तीर्थ स्थलों में से किसी एक की यात्रा के वष में एक बार अवश्य करते थे। कश्मीर, नाथद्वारा, जगन्नाथपुरी, मथुरा और हरिद्वार उनके यात्रा स्थल थे। गर्मी के दिनों में मसूरी, ननीताल और शिमला जाते थे। गया के प्रति भक्ति के

कारण प्रतिवध हरिद्वार जाता तो उाह लिए आवश्यक था। 'बिहारी रत्नाकर' की टीका उन्होंने कश्मीर प्रवास में पूरी की थी। पयटन के लिए समुद्री तटा पर पहुंच जाते थे। राजा महाराजाओं से व्यक्तिगत परिचय के कारण राजस्थान की रियासतों का भी वे प्रायः भ्रमण करते रहते थे। राजस्थान में वे राजाओं के अतिथि होकर ही जाते थे। राजस्थान की प्रायः सभी रियासतों में उनका आना-जाना था।

रत्नाकर जी वैभव-सम्पन्न घर में पैदा हुए थे। घर का रहन-सहन भी मेठा की मर्यादा के अनुसार था। बचपना से विद्याभ्यसन में पढ़ने वाले रत्नाकर जी पहले व्यक्ति थे। पढ़ना लिखना, कविता और शायरी का शौक रचना इस गठ घराने के लिए नई बात थी। किन्तु इस ध्यसन को बिगोना मुरा नहीं माना, प्रत्युत प्रोत्साहन देकर बढ़ाया। इनके पिता सेठ पुम्पोत्तम दाम ने इनकी पहली कविता की प्रशंसा करते द्रहें कविता करने की प्रेरणा दी थी। बचपन में रत्नाकर जी को कबूतर पालने का भी शौक था। जब दिनों रईम घराना में कबूतर, तीतर, खरगोश कुत्ता, बिल्ली आदि पक्षी और जानवर पालने का शौक रहता था। रत्नाकर जी ने कबूतरों का समीप से निरीक्षण किया था, उनके स्वभाव से वे परिचित हो गये। उमी आधार पर उन्होंने अपनी कविता में इसका वर्णन किया है।

रत्नाकर जी अप्रवाल वयस दश के सेठों का वस्त्राभरण में भी अनुकरण करते थे। शेरवानी और चूड़ीदार पाजामा तो उनकी ठाट-बाट की पोशाक थी। कभी कभी सेठों की पगड़ी भी पहन लेते थे। इन फुलेल का उन्हें बड़ा शौक था। कपड़ों में इन तो सभी शौकीन लोग लगाते हैं। रत्नाकर जी बिस्तर में भी इन का प्रयोग करते थे। उनका देश विन्यास, खान-पान, रहन-सहन सब सुसुचिपूर्ण था। राज दरबारों से सम्बन्ध रहने के कारण उसी प्रकार का शिष्टाचार भी उनके व्यवहार में सहज आ गया था।

विद्याभ्यसनी होने के कारण साहित्य, दशन, पुरातत्व, अध्यात्म, पुराण आदि विषयों की पुस्तकें पढ़ने में उनका समय व्यतीत होता था। अयोध्या में रहते हुए उह वहां के राजनीतिक झगड़ों और कचहरी के मामलों में लगभग पंद्रह वर्ष तक निरंतर फस रहना पड़ा जिसके कारण काव्य-संजन में नहीं कर सके। किन्तु स्वाध्याय में यवधान नहीं आया। हिन्दी के प्राचीन कवियों की कविता उनकी स्वाभाविक रुचि का विषय थी। विशेषतः रीतिकालीन देव, मन्त्रिराम, बिहारी, धनानन्द, पद्माकर, केशव आदि कवियों की सरस रचनाएँ उहे कठस्थ थीं। नायिकाभेद और शृंगार वर्णन में भी उनकी रुचि थी। संयोग शृंगार का बहुत सुन्दर वर्णन उनकी काव्य-कृतियों में मिलता है।

रत्नाकर जी का अयोध्या प्रवास का समय तो देश की राजनीति और समाज की स्थिति से कुछ बटा रहा, किन्तु फासी आन पर उन्होंने राजनीति विषयक

काव्य सृजन भी किया और सामाजिक तथा साहित्यिक कार्यों में भी सक्रिय रूप से भाग लेना शुरू किया। वाशी नागरी प्रचारिणी सभा से तो रत्नाकर जी उसके जन्म बाल से ही जुड़े थे। वाशी आने पर सूरसागर के सम्पादन का काम हाथ में लिया और बाबू श्यामसुन्दर दास के साथ सभा के कार्यों में सहयोग किया। एशियाटिक सोसाइटी के भी सदस्य बने। ओरियंटल काफ़ेस में भी योग दिया। 'वाशी कवि समाज' की स्थापना में रत्नाकर जी अग्रणी थे और कवि-समाज की बैठकों में हमेशा उपस्थित रहते थे। स्वयं कवितापाठ और समस्यापूर्ति भी किया करते थे। रसिक मठल, प्रयाग की स्थापना में भी इनका हाथ था। इस प्रकार साहित्यिक गतिविधियों से जुड़ कर रत्नाकर जी ने साहित्य और समाज की अच्छी सेवा की थी।

रत्नाकर जी का गृहस्थ जीवन विशेष सुखमय नहीं रहा। इनके दो विवाह हुए थे और दोनों पत्नियों का शीघ्र ही देहान्त हो गया। पहली पत्नी से दो सतान प्यो। एक पुत्र और एक पुत्री। पुत्र का नाम राघेष्टुण्णदास था। दूसरी पत्नी से दो सतान हुईं और दोनों अकाल कवलित हो गईं और पत्नी भी स्वयं सिंघार गईं। इनके पुत्र राघेष्टुण्ण दास का सालन-पालन इनकी विधवा भाभी ने किया था।

रत्नाकर जी की काव्य प्रतिभा का सिक्का उस समय के विद्वानों पर पूरी तरह जम गया था। बाबू श्यामसुन्दर दास, प० पदमसिंह शर्मा, श्री चन्द्रधर शर्मा, गुलेरी, नाथूराम शर्मा 'शकर' आदि साहित्य ममन इनके प्रशंसक थे। सुप्रसिद्ध अग्रज विद्वान् सर जाज त्रियसन भी इनकी प्रतिभा से परिचित थे। उन्होंने लाल चन्द्रिका की टीका में इनका उल्लेख बड़े सम्मानपूर्वक किया है। बाबू देवकीनन्दन खत्री के सहसम्पादकत्व में इन्होंने 'साहित्य सुधा निधि' नामक मासिक पत्र निकाला था जो विद्वत्समाज में लोकप्रिय था। समालोचनादश के कारण भी इनकी ख्याति हिंदी जगत में फैल गई थी।

वाशी में रहते समय रत्नाकर जी का समय साहित्य-सृजन में ही व्यतीत होता था। शारीरिक दृष्टि से कोई इन्हें शिथिल या सुस्त नहीं कह सकता था किन्तु भीतर-ही भीतर हृदय रोग ऐंजाइना ने इन्हें घेर लिया था। उन्हें स्वयं भी इस रोग के कारण अपने अन्तिम समय का आभास होने लगा था। सन् १९३२ के जून मास में जब हरिद्वार जाने लगे तो सूरसागर के शेष काय की उन्हें चिन्ता थी। श्री दुलारेलाल भागवत से उन्होंने इस काय के विषय में अपनी चिन्ता प्रकट भी की थी। रत्नाकर जी गंगा के परम भवत थे, इसलिए हरिद्वार उनका प्रिय स्थान था। जून मास में हरिद्वार पहुंच गये और वही २१ जून सन् १९३२ ई० को इनका देहावसान हुआ।

रत्नाकरजी के निधन से ब्रजभाषा काव्य का अन्तिम सर्वश्रेष्ठ कवि उठ गया उनके बाद किसी अन्य कवि ने इतना उत्कृष्ट काव्य ब्रजभाषा में नहीं लिखा और सवतोभावेन ब्रजभाषा को समर्पित कोई दूसरा कवि उनके बाद पदा ही नहीं हुआ।

## आधुनिक ब्रजभाषा काव्य और कविवर रत्नाकर

हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्ति तथा रीतिकालीन काव्य को प्राचीन कविता के नाम से अभिहित किया जाता है। इस कविता का अस्सी प्रतिशत भाग ब्रजभाषा में लिखा गया है। शेष बीस प्रतिशत में अवधी, राजस्थानी, बुंदेली, भोजपुरी आदि भाषाओं में लिखा साहित्य है। गोस्वामी तुलसीदास रचित 'राम चरित मानस' जायसी रचित 'पद्मावत', सूफी कवियों के प्रेमसाहयानक काव्य अवधी भाषा की कीर्ति स्तम्भ हैं किंतु इनकी संख्या सीमित है। राजस्थानी में इस काल में श्रेष्ठ काव्य लिखे गये किंतु उनको भी साहित्य में गौण स्थान प्राप्त हुआ। ब्रजभाषा में काव्य सृजन करने वाले कवियों की संख्या अपरिमेय है। स्वयं तुलसी जैसे महाकवि ने दस प्रायः ब्रजभाषा में लिखकर ब्रजभाषा को स्थापित काव्य-भाषा स्वीकार किया है। मीराबाई की पदावली की भाषा राजस्थानी होने पर भी वह ब्रज की छाप से बच नहीं सकी है। प्रायः प्रत्येक पद का अधिकांश ब्रज भाषा के माधुर्य से परिपूर्ण है।

रीतिकालीन कवियों ने प्रान्तीय भाषाओं का प्रयोग नहीं किया। उन्हें परि-माजित, प्राजल ब्रजभाषा भक्त कवियों द्वारा विरासत में सुलभ हो गई थी। अतः सभी श्रेष्ठ कवियों ने ब्रजभाषा को स्वीकार कर काव्य रचना की। देव, मतिराम बिहारी, पदमावर, घनानंद आदि कवियों ने ब्रजभाषा के साहित्य और माधुर्य को जिस मनोहारी रूप में पल्लवित किया, वह ब्रजभाषा को सावभौम काव्य भाषा बनाने में सहायक हुआ। ब्रजभाषा काव्य की यह अविच्छिन्न परम्परा भारतेन्दु युग तक बनी रही। भारत-दु-युग के इतिहास लेखक आधुनिक-युग और गद्य-युग की संज्ञा देते हैं किन्तु इस युग के प्रमुख कवियों की काव्य भाषा परम्परा प्राप्त ब्रजभाषा ही है। भावबोध में अवश्य परिवर्तन आया, किन्तु अभिव्यक्ति के लिए ब्रजभाषा को ही भारतेन्दु युगीन कवियों ने स्वीकार किया है। भारतेन्दु के समय में ब्रजभाषा के विषय में कोई विवाद खड़ा नहीं हुआ। प्रायः सभी कवि अपनी-अपनी शैली में ब्रजभाषा में कविता लिखते रहे। भारतेन्दु स्वयं ब्रजभाषा

के श्रेष्ठ कवि थे। कविता के अतिरिक्त अन्य साहित्य विद्याओं में उन्होंने खड़ी बोली को स्थान दिया है।

द्विवेदी युग के प्रारंभ में ब्रजभाषा को लेकर विद्वानों में कुछ विवाद का सूत्रपात हुआ। जिस प्रकार गद्य में खड़ी बोली का चलन हो गया था, उसी प्रकार कुछ लेखक कविता में भी खड़ी बोली को स्थान देने का आग्रह करने लगे थे। उस समय बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में 'खड़ी बोली बनाम ब्रजभाषा' का आंदोलन शुरू हो गया था। ब्रजभाषा के पक्षपाती भारतेन्दु युगीन कुछ कवि थे। उनका काव्य-संस्कार ब्रजभाषा का था अतः वे खड़ी बोली को कविता के लिए अनुपयुक्त मानते थे। उनके मत में खड़ी बोली में ललित एवं मधुर भावों की अभिव्यक्ति के लिए लोच लचक का अभाव है। श्रुति पेशलता का अभाव है। ब्रजभाषा के स्वीकृत छंदों में खड़ी बोली ढल नहीं सकती। अतः कविता के लिए ब्रजभाषा का अस्तित्व अनिवाय है। भक्ति और रीति काव्य की जैसी समृद्ध परम्परा ब्रजभाषा के पास है, वैसी खड़ी बोली में सम्भव ही नहीं है। इस प्रकार वे तर्कों के आधार पर ब्रजभाषा के पक्षधर अपनी स्थापना का प्रबल रूप से समर्थन करने में लगे हुए थे।

दूसरी ओर खड़ी बोली को साहित्य की समस्त विद्याओं में समान रूप से प्रयोग में लाने वाले विद्वान ब्रजभाषा से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर खड़ी बोली के पक्ष में व्यावहारिक दृष्टि से युक्ति और तर्क प्रस्तुत करने में तत्पर थे। खड़ी बोली गद्य के क्षेत्र में तो स्थापित हो चुकी थी और उसका प्रभाव भी निरन्तर बढ़ता जा रहा था। अतः द्विवेदी युगीन कवियों का ध्यान भी ब्रजभाषा से हटकर खड़ी बोली की ओर जाने लगा। पं० श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय, नाथूराम शर्मा 'शंकर', गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', रामचंद्र शुक्ल, भगवानदीन जादि कवियों ने ब्रजभाषा छोड़कर खड़ी बोली को काव्य का माध्यम बना लिया था। खड़ी बोली के निरन्तर बढ़ते प्रयोग और प्रभाव से जो दो सुकवि अछूते रहे, उनमें श्री जगन्नाथदास रत्नाकर और पं० सत्यनारायण कविरत्न का नाम उल्लेखनीय है। यों तो और भी अनेक कवि थे जो ब्रजभाषा में कविता लिख रहे थे किंतु उनकी स्फुट रचनाओं का साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं था। इन दो कवियों ने द्विवेदी युग में ब्रजभाषा काव्य की पताका फहराने का श्रेय प्राप्त किया और ब्रजभाषा को समृद्ध बनाने में प्रशंसनीय योग दिया।

बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने ब्रजभाषा को किसी आग्रह या हठ से स्वीकार नहीं किया था। वस्तुतः ब्रजभाषा उनके संस्कार की सहज भाषा थी। अपने शशव से उन्होंने ब्रजभाषा की कविता बड़े चाव से पढ़ी थी। ब्रजभाषा के श्रेष्ठ सुकवियों के सँकड़ो छंद उन्हें कठस्थ थे। प्रेम और शृंगार के कवित्त रत्नाकर जी जब सुनाने लगते तो उनका प्रवाह टूटता ही नहीं था। एव के वाद एक छंद उनके मुख से इस प्रकार निकलता, जैसे पवन से झरना निकल कर बहता है। एव ही

विषय के अनेक कवियों के छंदों की माला उनके कण्ठ में तयार रहती थी। ब्रजभाषा का यह प्रगाढ़ प्रेम और पावन सस्कार ही उन्हें ब्रजभाषा से बांधे रहा। उनके समकालीन अन्य कवि ब्रजभाषा छोड़कर खड़ी बोली के जाल में फँस गये किन्तु रत्नाकर जी अन्य भाव से ब्रजभाषा की सवा म आजीवन तत्पर रहे।

ब्रजभाषा के साथ रत्नाकर जी के प्रेम का दूसरा कारण उनका भक्ति-साहित्य का अध्ययन और प्रेम था। भागवत, भूरसागर, रासपचाध्यायी, अष्टछापों कवियों की वाणी और वृष्ण भक्ति सम्प्रदाय के कवियों की मनोरम रचनाएँ उनके अनुशीलन का विषय थी। रहीम, रसखान और मीरा के छंद एवं पद उनकी जिह्वा पर धिराजते थे। रसखान के सर्वे तो उनके मुख से ऐसे निकलते जैसे वे रसखान के नहीं रत्नाकर के हों। रीतिकालीन कवियों ने ब्रजभाषा में लालित्य, मादक, माधुर्य और प्राजलता का पुट दवर जो प्रवाह उत्पन्न किया था, उसे आत्मसात करने का भी रत्नाकर ने भरसक प्रयास किया था। ब्रजभाषा में सोच-सचक के साथ श्रुति पशलता का गुण भी रत्नाकर जी को आवपक लगता था। अतः उन्होंने ब्रजभाषा का दामन नहीं छोड़ा। खड़ी बोली के प्रचार प्रसार ने जो वातावरण उस समय बनाया था, रत्नाकर जी उससे प्रभावित नहीं हुए। उन्होंने चातक व्रत लेकर ब्रजभाषा में साहित्य-सजन का सुख प्राप्त किया। यदि इस प्रकार का व्रत धारण करने वाले किसी दूसरे कवि का स्मरण करना हो तो वह है प० सत्यनारायण कविरत्न। कविरत्न जी को ब्रजभाषा इसलिए भी प्रिय थी कि उनकी मातृभाषा ही ब्रजभाषा ही थी। ब्रज प्रदेश में उनका जन्म हुआ था, शैशव से इसी भाषा में बोलते और रचना करते थे। ब्रजभाषा के ये दोनों महा कवि अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त, बी० ए० उपाधिधारी थे। दोनों कवियों को अंग्रेजी, संस्कृत और फारसी का अच्छा ज्ञान था किन्तु इनकी काव्यनिष्ठा ब्रजभाषा में ही थी। रत्नाकर जी की मातृभाषा तो बनारसी भोजपुरी थी किन्तु अध्ययन और अभ्यास से अर्जित भाषा, ब्रजभाषा थी। यही दोनों कवियों में अंतर है।

ब्रजभाषा की समृद्ध परम्परा को स्वीकार करने वाले द्विवेदी मुनीन कवियों में सत्यनारायण कविरत्न के साथ प० वियोगी हरि, हरदयालु सिंह, रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' रामचन्द्र शुक्ल दुलारेलाल भागवत रामेश्वर करण जादि का नाम आता है किन्तु रत्नाकर इन सब में श्रेष्ठ और मूढान्य है।

'ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली' में जब आन्दोलन का रूप धारण कर लिया और पक्षों से अपने समय में तक प्रमाण प्रस्तुत होने लगे तब श्री जगन्नाथदास रत्नाकर ने अपने पत्र 'समालोचनादश' में इस विवाद पर छंदोबद्ध टिप्पणी की थी। उन्होंने ब्रजभाषा का पक्ष तो नहीं छोड़ा था, किन्तु खड़ी बोली असुवान्त छन्दविहीन कविता से भी उनका परिचय ही गया था—

जात खड़ी बोली में कोऊ भयो दिवानो ।  
कोउ तुकात बिन पद्य लिखन मे है अरुमानो ॥  
अनुप्रास प्रतिबध कठिन जिनके उर । माही ।  
त्यागि पद्य-प्रतिबधहु लिखत गद्य क्यो नाही ॥

जो लोग अनुप्रास, छन्द, यति गति को छोड़कर कविता लिखने में लगे थे, उन्हें रत्नाकर ने यही परामश दिया था कि वे गद्य को स्वीकार करें। कविता के क्षेत्र में घाघसी पैदा न करें। उह उस समय की खड़ी बोली की कविता 'अग-भग छवि छीन' दिखाई देती थी। यह सब होते हुए भी खड़ी बोली के सतत बढ़ते हुए प्रयोग और प्रभाव से रत्नाकर जी अपरिचित नहीं थे। उन्होंने वानपुर में कवि-सम्मेलन के सभापति पद से जो भाषण दिया था, उसमें इस तथ्य का समावेश है। उन्होंने खड़ी बोली के बढ़ते हुए प्रयोग को देखकर कहा था—'ब्रजभाषा कविता का ह्रास होने पर खड़ी बोली में कविता की जाने की आवश्यकता समझकर कुछ लोगो ने उसमें भी अपनी प्रतिभा का परिचय देना आरम्भ किया। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने भी कुछ छंद उक्त भाषा में लावनी के नाम से लिखे थे। उनके ऐसे छंद 'फूलों का गुच्छा' तथा 'विनय प्रेम पचासा' ग्रन्थों में पाये जाते हैं।

× × × खेद का विषय है कि खड़ी बोली में कविता करने वाले नवीन उत्साहिया ने ब्रजभाषा में कविता करना ही नहीं, प्रत्युत उसके ग्रन्थों का पठन-पाठन भी त्याग दिया। फल यह हुआ कि वे साहित्यिक सामग्री से, जो उसमें प्राचीन कवियों ने बड़े ध्रम से संचित की थी, वंचित हो गये। बीसवें अखिल भारतवर्षीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति पद से भाषण करते हुए उन्होंने इस बात को पुन उठाया था। उन्होंने अपना ब्रजभाषा प्रेम प्रकट करते हुए कहा था—'इस बात को स्पष्ट शब्दों में कहते हुए मुझे किंचित भी सकोच नहीं होता कि मैं ब्रजभाषा का पूण पक्षपाती और समर्थक हूँ। उसकी कविता में मुझे जो आनंद मिलता है, वह अकथनीय है और बहुत दूढ़ों पर भी वह मुझे दूसरी जगह नहीं मिलता। पर इसका यह तात्पर्य नहीं कि मैं खड़ी बोली की कविता का विरोधी हूँ

× × × मुझे यह स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है कि इस कविता का सौभाग्योदय होने वाला है। × × × मैं ब्रजभाषा के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूँ (खड़ी बोली की) जहाँ एक ओर सवतोमुखी उन्नति हो रही है, वहाँ दूसरी ओर हमारी ब्रजभाषा का क्षेत्र समुचित होता जा रहा है। जो भाषा एक समस्त हिंदी काव्य का प्रधान शीलाक्षेत्र और सवमाय थी, उसी की ओर आज हमारे नवयुवक वविगण उदासीन हो रहे हैं। जो अनेक उच्चकोटि के ग्रन्थ रत्ना की जननी थी, उसी के गौरव को नष्ट करने का आज जहाँ-तहाँ प्रयत्न देख पड़ता है। × × × जब खड़ी बोली के पक्षपाती कवियों को अपने प्राचीन साहित्य अर्थात् ब्रजभाषा की



उपेक्षा करते, उसे हीन-दीन तथा सवया घृणित बनाते हुए देखता हूँ तो मुझे आंतरिक व्यथा होती है। इस सँकड़ो वष पुराने साहित्य के प्रति यह व्यवहार न होना चाहिए। जिस साहित्य ने आपको जीवन दान दिया है, आपको शक्ति सम्पन्न किया है, विषम परिस्थितियों में आपकी सहायता की है और सकट के समय आपका उद्धार किया है, उसके प्रति आपको कृतज्ञ होना चाहिए। आज प्राचीन साहित्य में ऐसे ऐसे ग्रन्थ विद्यमान हैं, जो केवल हिन्दी साहित्य के ही नहीं प्रत्युत वाङ्मय मात्र के भूषण कहे जा सकते हैं। महारत्नाकर और गोस्वामी तुलसीदास प्रभृति कवियों को धपनाकर कोई भी देश अपने को घाय मान सकता है। यदि इन महात्माओं की कृतियाँ हिन्दी साहित्य से निकाल दी जाय तो फिर उसमें गौरव की वस्तु ही क्या रह जाती है। अथ देश में भी प्राचीन साहित्य का अर्वाचीन साहित्य से कहीं अधिक आदर होता है। चौसर और फिरदीसी अवज्ञा नहीं, पूजा के पात्र समझे जाते हैं।”

उपयुक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि रत्नाकर जी ब्रजभाषा के प्रदल समर्थक थे। उनकी दृष्टि में कविता के लिए खड़ी बोली की अपेक्षा ब्रजभाषा ही उपयुक्त भाषा है। लेकिन ज्यों ज्यों खड़ी बोली का प्रचलन बढ़ता गया त्यों-त्यों रत्नाकर जी का कठोर रुख कामल होता गया और उन्होंने खड़ी बोली का विरोध करना बंद कर दिया।

खड़ी बोली के सम्बन्ध में उन्होंने अपने विचार चतुर्थ ओरिण्टल काफेंस के हिन्दी विभाग के सभापति पद से दिये भाषण में व्यक्त किये हैं। उनके मत में खड़ी बोली को संस्कृत के क्लिष्ट तत्सम प्रधान शब्दा में भरना उचित नहीं है। भाषा में व्यञ्जन शब्दा को मुख्य स्थान मिलना चाहिए। यदि तत्सम प्रधान क्लिष्ट पदावली को न रोका गया तो भविष्य में हिन्दी जनसाधारण के लिए दुर्बुद्ध तथा संस्कृत प्राकृत के समान मृत भाषा हो जाएगी, बोलचाल की भाषा को किसी नवीन स्वरूप में बदल देना पड़ेगा। इस परामर्श के साथ ही उन्होंने अरबी फारसी के कठिन शब्दों के प्रयोग को भाषा के लिए अनुचित ठहराया है। उनके मत में बोलचाल की प्राचीन भाषाओं के शब्दों का प्रयोग भाषा को व्यावहारिक एवं प्रवाहपूर्ण बनाने के लिए अनिवार्य है। खड़ी बोली के सम्बन्ध में उनका कहना था कि वह प्रयोग की परिमार्जित भाषा बन गई है, अतः इसका नाम भी सुन्दर होना चाहिए। उन्होंने इसका ‘भारती भाषा’ नाम रखने का सुझाव दिया था।

कविवर रत्नाकर जी ब्रजभाषा के अतिरिक्त खड़ी बोली से किसी रूप में कविता नहीं लिखी। ब्रजभाषा की भङ्गुरता सुकुमारता पेशलता, साव्य और साहित्य के साथ वे आजीवन बंधे रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके सभी काव्य ब्रजभाषा के उत्कृष्टतम आदर्श काव्य बन सके।

रत्नाकर जी की काव्य कृतियाँ—रत्नाकर जी की पाँच काव्य कृतियाँ तो

अति प्रसिद्ध हैं, उनमें हिडोला, हरिश्चन्द्र, शृगार सहरी—प्रकीर्ण पद्यावली, गगावतरण और उद्धव-शतक। इनके अतिरिक्त समालोचनादश एक अनूदित रचना है जो रोला छद में है। कलवाशी उनका एक वणनात्मक प्रबंध काव्य है, जिसे वे पूरा नहीं कर सके। इसमें वाशी नगरी का वणन है। इस काव्य का अधिक प्रचार नहीं हो सका। वाशी नगरी की तत्कालीन स्थिति को समझने के लिए यह उत्तम कोटि की रचना है। रत्नाष्टक तथा वीराष्टक नाम से इनके तीस अष्टको का संकलन है। वीराष्टक में १४ वीर नर नारियो का रत्नावर जी ने स्मरण किया है।

यदि इन समस्त काव्य कृतियों को रत्नावर ग्रन्थावली के रूप में प्रकाशित कर दिया जाता तो उनके सभी छोटे बड़े ग्रन्थों से पाठक का परिचय हो जाता। गगावतरण, हरिश्चन्द्र और उद्धव-शतक से तो ब्रजभाषा प्रेमी रसिकवाद परिचित हैं। शेष रचनाएँ अब उपलब्ध भी नहीं होती। अतः इनके काव्य सौष्ठव से पाठक अपरिचित ही हैं।

उद्धव शतक की रचना से रत्नावर जी को जो सुयश मिला, वह इस बात का प्रमाण है कि यह रचना भाव, भाषा, शैली, अलंकार, विम्ब, प्रतीक आदि समस्त गुणों से परिपूर्ण होने के कारण बीसवीं शती की सर्वश्रेष्ठ ब्रजभाषा काव्य-कृति है और रत्नाकर आधुनिक युग के प्रतिभासम्पन्न सिद्ध कवि है। उनकी तुलना ब्रजभाषा क्षेत्र में किसी आधुनिक कवि के साथ नहीं हो सकती। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि रत्नावर जी केवल एक ही कृति 'उद्धव शतक' लिखत तो भी वे हिन्दी साहित्य में अमर रहते और उनकी ख्याति आधुनिक ब्रजभाषा के सर्वोत्तम कवि के रूप में सदब बनी रहती।

## भ्रमरगीत परम्परा और उद्धव-शतक

उद्धव-शतक, रत्नावर जी की सजब प्रतिभा का अप्रतिम निदर्शन है। इस काव्य को विद्वानों ने भागवत पुराण में वर्णित भ्रमर गीत परम्परा का तथा सूरदास एवं नन्ददास द्वारा रचित भ्रमरगीत शैली का आधुनिक संस्करण कहा है। वस्तुतः यह एक ऐसा सदभ है जिसका मूल बीज तो भागवत के दशम स्कन्ध के छियालीस तथा सैंतालीसवें अध्याय में उपलब्ध है किन्तु उसका पल्लवन भक्त कवियों ने अपनी प्रतिभा द्वारा किया है। भागवत में यह प्रसंग इस प्रकार वर्णित है

भ्रमरगीत का मूल स्रोत—श्रीकृष्ण को अक्रूर मयुरा ले गये थे। कृष्ण के माता पिता और गोपिया श्रीकृष्ण को मयुरा भोजने को तैयार उही थी किन्तु अक्रूर के विनम्र निवेदन और विश्वास भरे कचनों से आश्वस्त हो उन्होंने मयुरा जाने की स्वीकृति दे ली। श्रीकृष्ण मयुरा में रह तो रहे थे किन्तु उह ब्रज की याद व्यथित करती थी। उन्होंने एक दिन अपने प्रिय सखा और सचिव बृहस्पति शिष्य उद्धव को बुलाकर कहा कि हे उद्धव ! तुम ब्रज को जाओ और मेरे माता पिता तथा विरह विधुरा गोपियों को मेरा सदेह सुनाकर सात्वना दो। गोपियों का चित्त सदा मुझमें लगा रहता है। मैं उनका प्राण हूँ। मेरे लिए उन्होंने सबस्व परित्याग कर दिया है। मुझ प्रियतम के दूर चले जाने से वे अत्यन्त विरह व्यथित हैं और मेरे वापस गोकुल में आने के सदेश की आशा में अपने प्राण धारण किए हुए हैं—

मयि ता प्रेयसा प्रेष्टे दूरस्थे गोकुलस्थिय ।  
स्मरन्त्योद्ग विमुहभक्ति विरहोत्कठ विह्वला ॥  
घाग्यभ्यति कृच्छ्रेण प्राय प्राणा कथ चन ।  
प्रत्यागमनसंशेषवल्लभ्यी मे मदात्मिका ॥

भागवत पुराण—दशम स्कन्ध ४६ अ०

कृष्ण का सदेश लेकर उद्धव रथ पर बैठकर सायनाल गोकुल पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर पहले नन्द-यशोदा से कुशल क्षेम पूछा। प्रातः काल होने पर गोपिया

निद्रा त्याग कर उठी और घर की देहली पर पूजा करके दधि मथन करती हुई अपने प्रिय कृष्ण की लीलाओं का गान करने लगी। प्रातःकाल सूय का प्रवाण फलने पर नद के द्वार पर एक रथ खड़ा देखकर आपस में पूछने लगी— यह रथ किसका है? कहीं अनुर तो नहीं आया है जो हमारे प्रियतम कृष्ण को मथुरा ले गया था? क्या अब हमें लेने आया है और हमें ले जाकर हमारे मास से अपने मत स्वामी कस का औष्व दैहिक कम करेगा? गोपिया जब आपस में यह तक वितक कर ही रही थी कि उद्धव अपना रथ लेकर उनके पास पहुँच गये। उद्धव श्रीकृष्ण के समान पीताम्बर धारण किये हुए थे। कठ म बैसी ही माला पहनी थी। गोपियो ने उद्धव से जलाहता भरी भाषा में कहा, "हम जानते हैं तुम कृष्ण का सदेश किसके लिए लाये हो। अवश्य कृष्ण ने अपने माता पिता का स्मरण किया होगा और तुम्हारे हाथ सदेश भेजा होगा। सभी अपने प्रिय जनो को याद करते हैं। हमको कौन याद करने लगा? गोपिया ने उद्धव से कहा—पुरुषो का स्त्रियो के साथ वैसा ही स्वाथपूण लगाव होता है, जैसा भ्रमरो का पुष्पो के साथ।"

अन्येष्वथकृता मन्त्री यावदथ विडम्बनम् । ।

पुम्भि स्त्रीषुकृता यद्वत्सुमनस्विन पटपदै ॥

भागवत, दशमस्कन्ध, ४७ ६

गोपिया उद्धव की बात सुनने को तयार नहीं हैं। उद्धव कृष्ण की प्रशंसा करते हैं। कृष्ण के प्रेम को सच्चा बताते हैं किन्तु विरह विधुरा गोपिया सुनने को तयार नहीं हैं। उद्धव से स्पष्ट कहती हैं—हे भ्रमर! तू कृष्ण की यशोगाथा सुना कर हमारी चापलूसी न कर। ये सब बातें तो कृष्ण की मथुरावासी नयी प्रेयसियों को ही सुना। भागवत पुराण में यह सद्भ बहुत विस्तार से बड़ी ही भावुकतापूर्ण शैली में लिखा गया है। इसे पढ़कर गोपिया की विरह व्यथा सवाव सी प्रतीत होने लगती है।

भागवत पुराण में गोपी-उद्धव सवाद को तब-वितक या कुतक की तरह प्रस्तुत नहीं किया गया है। गोपिया अपना सच्चा प्रेम प्रकट करते हुए कृष्ण व प्रति उपासना ही देती हैं, उद्धव के ज्ञान का उपहास नहीं करती। उद्धव भी ज्ञान का, योग और ध्यान का गूढ उपदेश गोपियो को नहीं देते। गोपिया ता इतना ही कहती हैं कि हम सब अपने प्रिय कृष्ण के विरहानल में जल रही हैं। क्या वे कभी आकर हमें जीवन-दान देंगे? यहाँ के पर्वत, नदी, वन, गाएँ, वशी की ध्वनि बार-बार हमें श्यामगुदर का स्मरण करा रही हैं। उनकी मुललित गति, उदार स्मित विचित्र लीला बाकी चित्तवन और मधुरवाणी ने हमारा चित्त चुरा लिया है। हम उन्हें भूलें तो कैसे भूलें।

उदय न विरह विदग्धा गोपिया को भात भाव से वृष्ण का सदेश गुनाया । गोपिया आश्वस्त हुई और उन्होंने उदय का आदर सत्कार किया । उदय भी गोपिया के इस श्रीवृष्ण प्रेम को देखकर अपना स्वरूप भूल गये । उनका मन द्रवित हो उठा और उन्हें लगा कि विश्व के दहधारियों में गोपिया ही सर्वश्रेष्ठ हैं क्योंकि इनका चित्त सर्वात्मना वृष्ण में आसक्त है । उदय के मुख में चरबस म शब्द निकल पड़े—जहा ! क्या ही अच्छा हो यदि मैं यूदावन में इन व्रजागनाओं की चरण रज का स्नान करा वाली कोई सता, झाड़ी या वनस्पति बन जाऊ । नंद व्रज की इन गोपागनाओं की चरण रजु को मैं पुन-पुन प्रणाम करता हूँ । इस प्रकार प्रेमाभक्ति के रग में रगकर उदय मयुरा वापस आए और व्रजागनाओं की प्रगाढ़ प्रेमाभक्ति का उन्होंने श्रीवृष्ण के सम्मुख वणन किया ।

भागवत का यह सदम ही भ्रमरगीत काव्य का स्रोत है । हसी के सहार मध्य कालीन भक्त कवियों ने सगुण निगुण का विवाद, ज्ञान माग और भक्ति माग का विवाद खड़ा कर भ्रमरगीत काव्य का स्प्रेच्छापूर्वक प्रणयन किया है । भागवत में वाद विवाद का प्रश्न नहीं है । भक्ति और ज्ञान का भी सीधा सम्बन्ध नहीं है । गोपियों की आर से शुद्ध प्रगाढ़ प्रेमाभक्ति तथा श्रीवृष्ण के प्रति सर्वात्मना समर्पण मात्र है । इस प्रेमाभक्ति में ही उदय भी डूब जाते हैं । भागवत पुराण यही सिद्धांत पक्ष दिखाना है । प्रतिपक्ष या विलोम की बात वहां नहीं है ।

भ्रमरगीत में भ्रमर का स्थान—उदय के गोकुल आने पर गोपियों को श्रीवृष्ण की प्रेम लीलाओं का सहसा स्मरण हो आया और वे प्रेम विभोर हो उठीं । उन्हीं समय एक भ्रमर उड़ता हुआ एक गोपी के चरणों के समीप आकर गुणगुनाने लगा । उस गोपी ने श्याम वण के भ्रमर को देखकर ज्ञान विमूढ़ होकर समझा कि यह भ्रमर नहीं, घनश्याम श्रीवृष्ण का दूत है जो उस मानिनी गोपी को मनाने और सात्वना दन आया है । गोपी विदग्धा थी । अपने प्रेमी वृष्ण के वियोग में वह मानवती भी थी अतः उसने उस भ्रमर के व्याज से ही उदय से अपनी उपालभपूर्ण वाणी में बात कहना शुरू कर दिया । भ्रमर फूलों पर मडराता है गाता है । एक फूल से दूसरे फूल पर जा बैठता है । यह समस्त क्रिया-व्यापार उसी प्रेमी का है जो अनन्य भाव से प्रेम नहीं करता । इसलिए भ्रमर को उपालभ के रूप में चुनना सगत लगता है । भ्रमर तो व्याज मात्र है । उसके व्हाने से गोपिया उदय से मनमानी बात कह लेती है ।

उदय को ब्रज भेजने का कारण—श्रीवृष्ण ने उदय को ब्रज में क्यों भेजा था, यह बात भागवत पुराण के सदम में स्पष्ट की जा चुकी है किन्तु हिन्दी के भक्त कवियों ने तथा रत्नाकर जी ने उदय को ब्रज भेजने का कारण श्रीवृष्ण के मन में ब्रज की स्मृति का उदय होना ठहराया है । स्मृति को प्रदीप्त करने में स्मृति का बड़ा हाथ रहता है । विरह के क्षणों में सबसे अधिक पीड़ा पहुँचाने वाला भाव

स्मृति ही है। उपाध्याय जी ने प्रियप्रवास में लिखा है— "जब कवि यह विधाता ने रचा विश्व में था, तब स्मृति रचने में कौन सी चतुराई थी।" स्मृति में प्रेमी विह्वल हो उठता है। प्रेमी के मन में गहरी बेचैनी पैदा होती है और वह अपने प्रिय के पास जाने को आतुर हो उठता है। यदि पास पहुंचना संभव नहीं हुआ तो संदेश भेजता है। भागवत पुराण में उद्धव संदेश लेकर जाते हैं। उद्धव शतक में यह स्मृति प्रसंग बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है—

‘एक दिन यमुना में स्नान करते समय श्रीकृष्ण ने लहरो के बीच बहते हुए एक कमल पुष्प को देखा जिसका नीचे-ऊपर का भाग अधिक मुरझाया हुआ था। कृष्ण ने उमग में भरकर उस कमल को पकड़ लिया और सूघने की अभिलाषा से नाक से लगाया। ज्यों ही उसे नाक के समीप ले गये, त्यों ही चबकर खाकर, हाय शब्द का उच्चारण कर, अचेत हो गये। उनके पैर उखड़ गये और मुख पर बेचैनी छा गई। उद्धव उह बड़ी कठिनाई से तट तक ला सके तभी एक तोते ने राधा’ शब्द का उच्चारण किया (इस शब्द को सुनते ही उह ब्रज की मुग्ध आ गई)। स्मृति का कारण राधा नाम श्रवण ठहराया है। इस स्मृति जन्म वेदना से कृष्ण व्याकुल हो गये और उन्होंने उद्धव को ब्रज भेजने का निश्चय किया।

भ्रमर की दूत रूप में स्वीकृति—भ्रमर की कल्पना में कई कारण बताये जाते हैं। भ्रमर को स्वार्थी, लोलुप, रसिक वृत्ति का प्रतीक ठहराया जाता है। प्रेम की निष्ठा भ्रमर में नहीं होती, वह अनय भाव से किसी पुष्प से प्रेम नहीं करता। कली-कली का रस लेता भ्रमर रूप और गुण में गापियों को कृष्ण सदृश प्रतीत होता है। अतः श्रीकृष्ण के संदेश वाहक उद्धव को भ्रमर के समान रूप, गुण, शील का मानकर गोपिमा उपालभ देती हैं। साहित्य में कुछ काव्य रूढ़ियां बन जाती हैं। संदेश भेजने के लिए जड़ और चेतन दोनों प्रकार के कवि-समय प्रसिद्ध हैं। मेघदूत, पवनदूत, कोकिल दूत, हंसदूत। मेघ को दूत बनाकर संदेश भेजने का काम तो कालिदास ने भी लिया है। नैपथ्यचरित में हंस को संदेशवाहक बनाया गया है, जायसी ने तोते को संदेशवाहक बनाया है। सूरदास नन्ददास आदि कवियों ने भ्रमर की इस काम के लिए चूना है।

भ्रमरगीत की एक विशिष्ट विधा ही बन गई है। इसे कवि समय में रूढ़ि के रूप में स्वीकार कर लिया है। मुख्यतः उपालभ हास्य, व्यंग्य, कटाक्ष आदि के सद्भम में भ्रमर का प्रयोग कवियों ने किया है। जो बात कवि प्रत्यक्षत स्वयं नहीं कहना चाहता, वह भ्रमर के माध्यम से कह देता है। सूरदास और नन्ददास ने इस शैली का भरपूर प्रयोग किया है। दूत द्वारा संदेश और पत्र प्रेषण का भ्रमर-गीत काव्य में प्रयोग होता है। भागवत में पत्र प्रेषण का वर्णन नहीं है। वहाँ उद्धव मौखिक रूप से ही संदेश देते हैं। पानी संदेश सूरदास की मौलिक कल्पना है जिसे परवर्ती कवियों ने स्वीकार किया है। उद्धव-शतक की गोपियां तो पत्र

को प्यार तरती हैं और उद्धव से पूछती हैं कि हमारे प्यारे श्रीकृष्ण ने हमारे लिए क्या लिखा है, पढ़कर बताओ ।

सूरदास ने अपने भ्रमरगीत में भ्रमर प्रवेश बड़े नाटकीय ढंग में किया है । ज्यों ही भ्रमर जाया, त्यों ही गोपिया उसने आने का कारण पूछने लगी । व्यग्र हो उठीं, कहने लगी—हे भ्रमर तया तुम्हें कुब्जा ने यहा भेजा है या श्यामसुन्दर का सदेश लेकर आया है—

इहि अत्तर मधुकर इव आयो ।

निज स्वभाव अनुसार निकट हूँ, सुन्दर शब्द सुनायो ।

पूछन लागी ताहि गापिका, कुब्जिजा तोहि पठायो ।

कीधी सूर स्याम सुन्दर को हमे सदेशौ लायो ।

प्रायः सभी भ्रमरगीतों में मुख्यतः चार उल्लेखनीय पात्र हैं जिन्हें व्याख्याकार प्रतीक रूप में भी ग्रहण करते हैं । श्रीकृष्ण, गोपिया, उद्धव और भ्रमर । इनके अतिरिक्त व्यंग्य वटाक्षक के लिए कुब्जा का भी वर्णन यत्र तत्र मिल जाता है । कृष्ण सगुण ब्रह्म के प्रतीक हैं । गोपिया प्रेमाभक्ति की प्रतीक हैं । उद्धव ज्ञान या निगुण भक्ति के प्रतीक हैं और भ्रमर उद्धव के मन का प्रतीक है तथा कृष्ण की रस-लम्पटता का भी । कुब्जा प्रेमाभक्ति के माग का व्यवधान या अविद्या है जो तमोगुण के प्रतीक रूप में ग्रहण की जाती है ।

उद्धव शतक और भागवत पुराण में अन्तर—उद्धव शतक में श्रीकृष्ण, उद्धव और गोपियों का ही मुख्यतः वर्णन है । उद्धव श्रीकृष्ण के प्रिय सखा और सचिव थे । भागवत में उद्धव को ज्ञान या निगुण माग का प्रतीक या उपदेष्टा नहीं माना गया है । सूरदास ने उद्धव को ज्ञानी, योगी, निगुणमार्गी बताकर प्रतीक बना दिया है । रत्नाकर जी ने इसी रूप को उयो का त्याग स्वीकार कर लिया है । भक्त कवियों ने उद्धव को ज्ञान के अहंकार में निमज्जित अभिमानी व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है और यह दिखाया है कि उद्धव श्रीकृष्ण के स्वरूप को न समझकर दर्पोद्धत रहते हैं । सगुण भक्ति का महत्व और गोपिया रसमयी प्रेमाभक्ति उनकी पकड़ से बाहर है । अतः श्रीकृष्ण उन्हें गोपियों के पास भेजते हैं और निगुण भक्ति का उपदेश देने का आग्रह करते हैं । उद्धव शतक में उनका यही काम है जिसमें वे बुरी तरह विफल होकर सगुण प्रेम भक्ति मागक महत्व को स्वीकार करते हैं । यह सारा प्रपञ्च सूरदास और नन्ददास ने प्रेमाभक्ति के प्रचार के लिए किया था जो परवर्ती कवियों ने भी स्वीकार कर लिया । रत्नाकर जी इन्हीं कवियों के पदचिह्नों पर चले और उन्होंने भी उद्धव को प्रेममार्गी भक्त बना दिया ।

शतक-परम्परा—उद्धव शता एव तरह से विरह काव्य है किन्तु विरह की तीव्रानुभूति के साथ गोपियो का उत्कट प्रेम भी इसमें पूरा रूप से अभिव्यक्त हुआ है। अतः इसे कुछ समीक्षक शृंगार काव्य ही मानते हैं। विरहानुभूति शृंगार रस का ही एक रूप है। गोपिया अपना प्रेम प्रकट करने में तनिक भी सकोच नहीं करती, वरन् नाना रूपों में वे उद्धव के समक्ष अपने प्रगाढ़ कृष्ण प्रेम की व्यञ्जना करने में तत्पर दिखाई देती हैं।

रत्नाकर जी ने इस कृति का नाम 'उद्धव-शतक' रखा है। शतक लिखने की प्राचीन परम्परा रही है। अमरुत शतक संस्कृत का प्रसिद्ध शृंगार-परक मुक्तक काव्य है। इसके अनुकरण पर परवर्ती काल में और भी शतक लिखे गये हैं। मत्स्य हरि ने नीति शतक, शृंगार शतक, वीराग्य शतक लिखे। मयूर कवि का सूर्य शतक, वाण का चण्डिका शतक, उत्प्रेक्षा वल्लभ का सुन्दरी शतक और विश्वेश्वर कवि का रोमावली शतक अति प्रसिद्ध हैं। पुरानी राजस्थानी में जैनाचार्यों के शतक उपलब्ध हैं। हिन्दी में मुबारक कवि के अलक शतक और तिलक शतक मिलते हैं। शतक के साथ शप्तशती का भी प्रचार हुआ जो हिन्दी में सतसई नाम से जाना जाता है। रत्नाकर जी ने उद्धव शतक में ११८ छंद लिखे हैं किन्तु काव्य का नाम उद्धव शतक ही रखा है। यह शतक शब्द एक प्रचलित काव्य परिपाटी का पालन मात्र है।

००



## उद्धव-शतक की कथा-वस्तु

'उद्धव शतक में कथा का विस्तृत विव्यास नहीं है। श्रीकृष्ण को अक्रूर मथुरा ल गया थे। गोपिया और न द यशोदा नहीं चाहते थे कि श्रीकृष्ण गोकुल छोड़कर वही अयत्र जाए कि तु अक्रूर का आप्रहृण अनुरोध वे लोग टाल नहीं सके और श्रीकृष्ण मथुरा चले गये। कस वध के बाद मथुरा का सारा राज-काज ही उनके ऊपर आ गया और उह राज्य व्यवस्था में दिन रात व्यस्त रहना पडा। यह व्यस्तता इतनी बढ़ गई कि उह भ्रज की और भ्रजगोपिकाओं की सुध ही न रही। एक दिन यमुना में स्नान करते समय एक आधा मुरझाया फूल उनके हाथ में पड गया। यह कमल-पुष्प ऊपर और नीचे से मुरझाया हुआ था। इस मुरझाये कमल पुष्प ने अपनी विपण्ण और अवसत स्थिति से विरह विधुरा विद्यादमानी राधा का ध्यान श्रीकृष्ण को करा दिया। कमल-पुष्प तो व्याज मात्र था, जिस प्रकार वह मुरझाया हुआ था, राधा भी कृष्ण के वियोग से ऐसी उदास और विपण्ण होगी यह विचार कृष्ण के मन में कौध गया और व मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पडे। इसी बीच एक तोता (पक्षी) राधा राधा नाम लेकर पुकार उठा और उन्हें भ्रज कीधियो और भ्रज के कुजो में राधा के साथ विचरण का स्मरण करा गया।

राधा का स्मरण आते ही उन्होंने अपने परमसखा एव विश्वस्त सचिव उद्धव को बुलाया और उनसे कहा कि 'मुझे भ्रज का स्मरण बहुत पीडा पहुचा रहा है। नद-यशोदा का वात्सल्य, गोपियो का माधुयपूण प्रेम, ग्वाल बालो का स्नेह-औदाय सब एक साथ मेरे स्मृति पटल पर उभर आया है। मैं इस स्मरण से वेचन और छिन हो गया हूँ। जिन केलि कुजो में से गोपियो के साथ आठो पाम विचरण करता था व कुजवन अब मेरे नेत्रो में धूम रहे हैं। गोकुल की मवेली गोपियो का गौरव लेकर जाना, गाना, बजाना, नाचना, मेरा बामुरी बजाना, भ्रज मडल का यह समस्त सुख-सम्पत्ति साज आज किसी प्रकार भी भुलाये नहीं भूलता।' श्रीकृष्ण ने अपनी मानमिक व्याकुसता और विरह-वेदना उद्धव के समक्ष बड विस्तार से प्रस्तुत कर दी।

उद्धव ने श्रीकृष्ण की इस व्याकुल मन स्थिति को देखकर पहले तो सोचा कि इहे समया-बुद्धा कर शान्त किया जाय लेकिन जब उन्हें लगा कि श्रीकृष्ण के मानस पटल पर स्मृति का जो गहरा निशान बन गया है वह अमिट है। अतः श्रीकृष्ण की बात सुनना और तदनुसार वाय करने की श्रेयस्कर है। श्री कृष्ण ने उद्धव से कहा, हे उद्धव ! तुम एक बार गोकुल जाकर मेरा सदेश गोपियो तक पहुंचा दो। उनमें बाद यदि कुछ जोर कहना चाहोगे तो मैं उसे अवश्य सुनुगा। इस समय तुम अपना ज्ञानोपदेश बंद करो और सीधे गोकुल को प्रस्थान करो। उद्धव ने श्रीकृष्ण की बात मानकर पहले अपने ज्ञान माग का मम समझाना चाहा और कहा कि गोपियो का प्रम मिथ्या है, क्षण भंगुर है, इस ससार में केवल ब्रह्म ही सत्य है। पंचभूतात्मक जगत् में भेद बुद्धि रखना व्यथ है। ब्रह्म ही समस्त चराचर जगत् में समान भाव से व्याप्त है। अतः इस भौतिक प्रपञ्च में नहीं पडना चाहिए। वेदात्त दर्शन का ज्ञान माग उद्धव ने बड़ी प्रखर प्रतिभा और विद्वता से श्रीकृष्ण को समझाया कि 'तु उहोने उसे स्वीकार नहीं किया। उद्धव ने तो यहाँ तक कह दिया कि वे राजवासी किसी सुयोग की तलाश में है, ये तुम्हें अपने कपट जाल में फसाना चाहते हैं। गजराज के उद्धार कर्ता होकर तुम्हें गज नहीं बनना चाहिए। जिस प्रकार गज कपट जाल को न समझ कर जाल में फस जाता है, वैसे ही तुम्हें ये लोग फसाना चाह रहे हैं। 'वारन कितेक तुम्हें, वारन कितेक करें, वारन उत्रारन हूँ वारन बनौ नहीं।'

अपन ज्ञानी सखा उद्धव के वचन सुनकर श्रीकृष्ण का प्रेम प्रवाह शान्त नहीं हुआ वरन् और तीव्रगति से उनके भीतर प्रेमाम्नि तीव्र होकर प्रज्वलित हो उठी। श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा— मुझे शांतिपूर्वक प्रेमाश्रु बहा लेने दो। मेरे हृदय का व्यथा भार प्रेमाश्रु बहाने से ही शांत होगा। मेरे दग्ध अन्तःकरण को य आमु शीतल जल सीकर का काम देंगे और मुझे मानसिक शान्ति प्राप्त होगी। हे उद्धव ! तुम अपना ज्ञानोपदेश इस समय बंद कर दो और कृपापूर्वक गोकुल चले जाओ। जब वहाँ से लौट कर वापस आओगे तब मैं तुम्हारा उपदेश ध्यानपूर्वक सुन लूंगा। तुम्हारे उपदेश को मैं दाता द्वारा दिये गये दान के समान ग्रहण करूंगा। गोपियो की चर्चा चलने और उनका ध्यान आते ही मेरा मन अधीर हो उठा है। जिस प्रकार पवन से उद्वेलित होकर धूल वायु मडल में उड़ने लगता है, वैसे ही गोपियो की चर्चा से मेरा धैर्य धूल बनकर उड़ गया है।' वेदना और स्मृति जय मनोदशा से विह्वल होकर श्रीकृष्ण का कठ अवरुद्ध हो गया। उद्धव के हाथ जो सदेश भेजना चाहते थे, वह भी स्पष्ट नहीं कह सके। नेत्रों से अश्रु प्रवाह हो उठा और उन्हीं अश्रुओं में कृष्ण का प्रेम सदेश भी व्यक्त हो गया। जब वेदना का अतिशय होता है, मुख से शब्द नहीं निकलते, आँधों से अविरल अश्रु प्रवाह जारी हो जाता है।

उद्धव श्रीकृष्ण का अप्रहृष्ट अतुरोच स्वीकार कर ब्रजगमन के लिए तैयार हुए, तभी श्रीकृष्ण के मन में भी ब्रज-गमन की आतुरता व्याप्त हो गई। भले में अवरोध से हिचकिया आने लगी, रोम कूपों से स्वेद प्रवाहित हो उठा। कृष्ण के मन की कोमल भावनाएँ कुछ मुख माग से निकलने लगीं ता कुछ नेत्र रूपी खिड़कियों से प्रकट हो लगीं। कहने का तात्पर्य यह है कि श्री कृष्ण का तन मन सब विभोर हो उठा और ब्रजगमन की इच्छा से पुलकित हो गया। लेकिन वे स्वयं तो जा नहीं सकते थे, अतः अपने सखा उद्धव को दूत बनाकर भोजना ही उन्हें उचित लगा। उद्धव शतक की कथा का यही जादि भाग है।

उद्धव गोकुल के लिए रथ पर बैठकर प्रस्थान करने लगे तो कृष्ण कुछ कहने को समीप आते हैं किन्तु हृदय भावावेश से भरा है। कुछ ही कहते नहीं बनता, लौटते भी नहीं बनता। चातो के आदेश में वे रथ के साथ साथ चलते रहते हैं। उन्हें याद ही नहीं रहा कि उन्हें इस समय गोकुल नहीं जाना है। वे स्वयं गोकुल नहीं जा रहे हैं। वे तो उद्धव को गोकुल भेजने के लिए आये हैं।

उद्धव बड़े उत्साह और उमग भरे मन से गोकुल के लिए चले किन्तु ज्या ही ब्रज प्रदेश का प्राकृतिक सौंदर्य उनके सामने आया, वे अपनी ज्ञान की सम्पत्ति को भूलने लगे। गोकुल के समीप बहने वाली यमुना कछारों में उनका ज्ञान-रूप खो गया। ज्ञान की जो पूजा लेकर वे निकले थे वह समाल और करीस के झाड़ों में बिखर गयी। उनके मन में ब्रज भूमि के प्रति रागात्मक भाव का उदय होने लगा और वे शुष्क ज्ञान माग से हट कर प्रेमाभक्ति की ओर अप्रसर होने लग। ज्ञान की गूढ़ गभीर परिभा और योग की यम नियम से सुदृढ़ श्रु खला उद्धव के भीतर समाप्त होनी प्रारंभ हुई। उद्धव का मन रूपी मानसर जिसे ज्ञान रूपी प्रखर सूर्य की किरणों ने सुखा दिया था, उस फिर काले बादल (घनश्याम) सजल और सुंदर रागमय बनाने लगे। इस प्रकार की परिवर्तित मन स्थिति में उद्धव का ब्रज में प्रवेश हुआ।

परम ज्ञानी उद्धव जो ब्रह्म की सत्ता में विश्वास रखते हुए सबत्र ब्रह्म को ही देखते थे, ब्रजभूमि में पहुँचते ही प्रेम के प्रभाव से अधीर हो उठे। उनका मुख विवर्ण हो गया शरीर शिथिल हो गया, कंठ में वाणी अवरुद्ध हो गई। बोलना सम्भव न हो सका। बरसाने में कौन सी वायु बह रही थी जिस के प्रभाव से उद्धव रोमांचित होकर स्वेद से भीग गये कम्पायमान होकर मूर्च्छित हो गये। उद्धव की यह दशा जिस प्रभाव से हुई, वह उनके लिए अज्ञात पूव थी और वे इसका रहस्य स्वयं समझ नहीं सके।

उद्धव के ब्रज में आगमन का समाचार सुनकर गांधीपिया लाख-लाख अभिषापाओं से भर कर सब काम-काज छोड़ कर भाग खड़ी हुई। अपने मनोभाव को दबा कर उद्धव के आनन पर अपनी भाग्य लिपि को पढ़ने की इच्छा से

अपनी साँस को रोक कर, भीतर ही भीतर दुमड्डे आसुओं को रोक कर, नरेश की मूर्ति गोपिया आशा भरे नेत्रों से उद्वेग को निहारने लगी। अपने आशा थी कि शायद उद्वेग श्रीकृष्ण के वापस आने का कोई समाचार उन्हें सुनाये। मनुष्यावन कृष्ण का संदेश सुनने की जिज्ञासा और इच्छा इतनी प्रबल थी कि मुझे ले ली बनाकर गोपिया नद के द्वार पर एकत्र हो गईं। उचक-उचक, पत्तों के बल बड़े होकर उत्कठा भर मन से सदश सुनने को व्यग्र हो उठी। इसी व्यग्रता में उद्वेग से पूछने लगी, बताओ हमको कृष्ण ने क्या लिखा है। हमारे लिए क्या संदेश है। गोपियों की इस आतुरता के देखकर उद्वेग चकित रह गये। ज्ञान का समस्त चातुर्य समाप्त हो गया, केवल कुशल-संदेश की ही बात सुनते हैं, संदेश देना भूल जाते हैं। उद्वेग की मन स्थिति से गोपिया आशकित तो होती है किन्तु उनके भीतर कहीं आशा का कण विद्यमान है जो कहता है कि कृष्ण ने कोई न कोई संदेश अवश्य दिया होगा। वे पूछने का साहस जुटाती हैं किंतु मुख से वचन नहीं निकलत, केवल कराह निकल कर रह जाती है। गोपियों की इस दशा से उद्वेग भी हतप्रभ हो जात है। ज्ञान का गव दूर हो जाता है। नेत्रों से अश्रु प्रवाह होन लगता है, कंठ अवरोध हो जाता है। वे मोचने लगते हैं कि मेरा ज्ञानोपदेश बड़ा है या इन गोपिया का प्रेम? अपनी ज्ञान राशि को लुटता हुआ देखकर उद्वेग स्वयं विभ्रम में पड़ कर विकलव्यविमूढ़ हो जाते हैं। उद्वेग ज्ञान का सूय लेकर ब्रज में इसलिए आये थे कि ब्रज की गोपिया प्रेम के अधकार में डूबी है, उन्हें ज्ञान का प्रकाश चाहिए लेकिन यहाँ आने पर उनको ध्यान ही नहीं रहा कि मैं क्यों यहाँ आया था। गोपिया की विरह वार्ता सुनते ही उनके ज्ञान का आलोक अस्त हो गया। ज्ञान दीप की वत्ती बुझ गई। एव हाथ में पत्र जिसमें श्री कृष्ण का संदेश था पकड़े रह और दूसरा हाथ अपने वक्ष पर रखकर इस दृश्य को देखते रह गये।

इस विकलव्यमूढ़ स्थिति से उबरने पर उद्वेग को अपने दायित्व का बोध हुआ। उन्हें ध्यान आया कि मैं तो गोपियों को ज्ञान माग का उपदेश देने आया था। अतः सचेत होते ही उन्होंने अपने कनव्य का निर्वाह गोपियों को ज्ञानोपदेश से प्रारंभ किया। सबसे पहले उन्होंने गोपियों को ब्रह्म का स्वरूप समझाया और कहा कि यदि "तुम भगवान् कृष्ण को हृदय में बसाना ही चाहनी हो तो योग साधना से उसे अपने भीतर बसाने का प्रयास करो। अपनी आत्मा को परमात्मा में लीन कर जड़ चेतन भेद से मुक्त कर लो। यदि तुम यह कर सकोगी तो कृष्ण के बाह्य रूप के दर्शन की लालसा नहीं रहगी और तुम कृष्णमय हो जाओगी। तुम कृष्ण से वियोग का अनुभव कर रही हो वह तुम्हारा अज्ञान है। यदि जीव और ब्रह्म का एकत्व समझ सकी तो माया अथवा अविद्या का पर्दा हट जायगा। ध्यान रह कि समस्त पदार्थों और प्राणियों में पंचतत्व की ही सत्ता है। कृष्ण में और

तुममे ये पांच तत्व ही ध्याप्त हैं। ब्रह्म और जीव का अभेद समझ कर ही तुम कृष्ण से प्रेम करो। सासारिक भौतिक शरीर की कल्पना मन से हटा दो। तुम में और कृष्ण में कोई भेद नहीं है, दोनों एक हैं, यही अद्वैत भाव तुम्हें समझना चाहिए। यह निगु ण, निराकार ब्रह्म की सत्ता का सच्चा ज्ञान है। जब तक निगु ण ब्रह्म का योग-साधना से ध्यान नहीं करोगी ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं होगा, मोक्ष नहीं मिलेगा, कृष्ण से सादात्म्य नहीं होगा।”

उद्धव के इस शुष्क ज्ञानोपदेश को सुनकर कोमलांगी अजागनाए कांप उठी। अवाक् होकर स्तम्भित रह गई। किसी किसी गोपिका को बहुत क्रोध हो आया, कोई प्रस्वेद से भर गई, कोई अचेत हो गई। कहने का तात्पर्य यह है कि उन्हें यह उपदेश जरा भी प्रीतिकर नहीं लगा। वे तो कृष्ण का प्रेम सदेश सुनने आई थी। उन्हें आशा थी कि उद्धव गोपियों को कृष्ण के मथुरा से वापस आने की तिथि की सूचना देंगे। लेकिन उद्धव तो उल्टी-सीधी बातें कह कर गोपिया को कष्ट देने में तत्पर हैं। योग और ज्ञान माग का उपदेश सुनने गोपिया नहीं आई थी।

गोपियों के मन में उद्धव के प्रति आक्रोश का भाव आया क्योंकि वह ज्ञान-मूढ व्यक्ति नारी-मन को समझने में असमर्थ था। प्रियतम से विमुक्त नारी विरह की दशा में उपदेश नहीं सुनना चाहती, वह तो प्रियतम से मिलन की आकांक्षा रखती है। गोपिया सीधे तरीके से यही जानना चाहती हैं कि श्रीकृष्ण मथुरा से कब लौटेंगे? हमें निगु ण ब्रह्म का उपदेश नहीं, कृष्ण का सुन्दर सलोना प्रत्यक्ष दर्शन चाहिए। उपालभ की भाषा में यह भी कहना नहीं चूकती कि मथुरा प्रवास के समय श्रीकृष्ण को सारे सुख सुलभ होंगे, उन्हें हमारी याद क्यों आने लगी। उद्धव के मुख से बार बार ब्रह्म की चर्चा सुनकर वे कहती हैं कि तुम कृष्ण के दूत हो या ब्रह्म के। ब्रह्मचर्या में लीन होकर शायद तुम कृष्ण को भूल गये हो। तुम जीव और ब्रह्म की अभेदता तथा अद्वैतता का वर्णन करते हो। हम इस अद्वैत भावना में विश्वास नहीं रखती। तुम जो कुछ कर रहे हो वह हमारे लिए सबथा अप्राप्त है। जिस श्यामसुन्दर का हम अपने हाथों से श्रृंगार किया करती थी, तुम उसे अरूप, अलेख और अशरीरी ही बताते हो। यह मिथ्या ज्ञान हम कभी मान नहीं सकते। तुम कहते हो हम योग-साधना करें, प्राणायाम से वायु निरोध करें, किंतु यह भूल जाते हो कि वायु से तो अग्नि और अधिक प्रज्वलित होती है। हमारी वियोगाग्नि को यह प्राणायाम की वायु अधिक कुपित करेगी। यदि तुम्हारा ब्रह्म निराकार, निर्लेप है तो उसका ध्यान कैसे करें। योग शिक्षा देने आये हो तो कृष्ण से वियोग की बात क्यों करते हो? हमने तुम्हारा उपदेश सुन लिया, अब तुम चुपचाप मथुरा का सीधा रास्ता पकड़ो और वापस चले जाओ। हम लोक-लाज छोड़ कर कृष्ण प्रेम में निमग्नित हुई हैं। हमें अब नियम, व्रत, समय का उपदेश देना

सूखता है। तुम अशरीरी कृष्ण का ध्यान करने को कहते हो, यह बात ऐसी है जैसे कोई कह कि खरगोश के सींग पकड़ कर चलो। शश शृ ग की बात जितनी वेतुकी है उतनी वेतुकी ही बात निराकार की उपासना की है। हमारा कृष्ण तो गायो को चराता था, उनका दूध निकालता था, तुम्हारा रूप रग, आकार हीन ब्रह्म ये सब काम कैसे करेगा ?

उद्धव ने गोपियो को जगत का मिथ्यात्व समझाते हुए कहा कि हे गोपियो, यह जगत स्वप्नवत् है, सत्य नहीं है। गोपियो ने तपाक से उत्तर दिया कि स्वप्न तो सोते हुए व्यक्ति को आते हैं। तुम जाग्रत अवस्था में नहीं हो। सोते हुए व्यक्ति की बात कौन सुने ? तुम्हारा ज्ञान-भाग टेढ़ा है। हम सीधे प्रेम मार्ग पर चलने वाली हैं। हम ब्रह्म ज्योति में लीन नहीं होना चाहती, हमें मुक्ति की चाह नहीं है। हम तो बार-बार जन्म धारण करना चाहती हैं ताकि हमें प्रत्येक जन्म में कृष्ण का सान्निध्य प्राप्त होता रहे। हम कृष्ण वियोग जय दुख विधाता का विधान मान कर भोग रही हैं, हम इस दुख से 'मुक्ति नहीं चाहती।' निराकार ब्रह्म की उपासना का उपहास तो गोपिया निरंतर करती रहती है। उनका कहना है हमारा मन श्याम रग (कृष्ण) में रग गया है। उस पर भगवारग (साधुओं का) नहीं चढ़ सकता। भगछाला विछा कर उस पर बैठना और योग-ध्यान करना भी हमारे लिए संभव नहीं है क्योंकि कृष्ण वियोग में सूख कर हमारा शरीर मृगछाल जसा जजर हो गया है।

गोपियो ने उद्धव के सदेश से खीझ कर कहा कि जो बात तुम सदेश रूप में हमें कह रहे हो वह श्रीकृष्ण-वचन नहीं है। ये तो कुबजा ने सिखा-पढ़ाकर तुम्हें रटा दिये हैं और तुम हमसे उन्हें कृष्ण-सदेश के नाम से कह रहे हो। हमें तुम्हारा विश्वास नहीं है। हम तुम्हारी बताई सारी योग क्रिया, ज्ञान, ध्यान करने को तत्पर हैं किन्तु इतना तो बता दो कि यह सब करने से कृष्ण की प्राप्ति संभव होगी या नहीं ? हम कृष्ण को पाने के लिए तुम्हारे बताये मार्ग पर चलने को तत्पर हैं लेकिन जो चित्र कृष्ण का हमारे हृदय पटल पर अंकित है यदि तुम्हारा बताया ब्रह्म वंसा न हुआ तो हम उसे स्वीकार नहीं करेंगी। हम भावुक नारिया हैं। सहृदयता हमारा सबल है। हम तक के नेत्रों से कृष्ण को नहीं देखती, हमारी दृष्टि प्रेम और अनुरागसिक्त है। मथुरा के लोग तक प्रवीण होते हैं। मथूर पक्षधारी कृष्ण दशन के लिए सच्ची आँखें चाहिए, नक्ली आँख से मोरपक्षधारी कृष्ण नहीं दिखाई देते। यदि तुम ने हमारी आँखों से कृष्ण को देखा होता तो तुम निगुण निराकार ब्रह्म ज्ञान की बात करने का साहस कभी न करते। हमारा प्रेम पारावार, अथाह और अगम है, यह वह सागर नहीं है जिसे अगस्त्य मुनि ने सोख लिया था। उद्धव ने अपने ज्ञान भाग के विषय में जो कुछ कहा, उसे गोपियो ने तर्क मुक्ति पूर्वक काट दिया। निगुण, निराकार, रूप, रेख विहीन ब्रह्म

ज्ञान को सम्बन्धी चौड़ी घर्चा उद्भव को स्वयं निरपेक्ष प्रतीत होने लगी। उद्भव से गोपियों ने केवल अपनी विरह व्यथा ही नहीं कही, बल्कि उद्भव के ज्ञान मार्गी उपदेश का तुर्की-य-तुर्की उत्तर भी दिया। महा कथा का मध्य भाग पूरा होता है।

गोपियों के स्नेहसिक्त एव तकपूण वचन सुनकर उद्भव का मन भाव विभोर हो उठा। निगु ण ज्ञान भाग का उपदेश उन्हें स्वयं निस्सार प्रतीत होने लगा और उन्होंने निर्णय किया कि अब अधिक सवाद या वार्तालाप की आवश्यकता नहीं है। गोपियाँ अपने निश्चय पर अटल हैं, उन्हें किसी भी ज्ञानोपदेश द्वारा अपने निर्णय से विमुख नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में यही उचित है कि मथुरा लौट कर श्रीकृष्ण को गोपियों की मन स्थिति से अवगत करा दिया जाय। फलतः उद्भव ने गोपियों को बुला कर कहा कि मैं अब मथुरा वापस जाता हूँ, यदि तुम्हें कोई सदेश श्रीकृष्ण के लिए देना हो तो दे दो। गोपियाँ उद्भव को विदा देने में अपने को असमय पा रही थीं। फिर भी वे साहस बटोर कर उद्भव के समीप एकत्र हो गईं। श्रीकृष्ण के लिए उपहार स्वरूप कोई गोपी मोरपख लाई थी, किसी के पास अजलि में घुघुचिया थी, किसी के पास स्वादिष्ठ मीठा दही था, किसी के पास छाछ थी। नव ने अपने लाडले पुत्र के लिए पीत पट दिया था, यशोदा माता ने ताजा नवनीत और राधा ने सुरीली बाँसुरी बँट की थी। किसी किसी गोपी का मन इतना भाव विह्वल हो उठा था कि वह कुछ कह नहीं पा रही थी। फिर भी जो कहना चाहती थी, वह इतना ही कह पा रही थी कि जरा हमारी बात सुन लो, हमारा निवेदन सुन लो। इस प्रकार मिन्नत-आरजू करती हुई गोपियाँ बहा इकट्ठी थीं।

जो गोपियाँ लिखित सदेश भेजना चाहती थी, उन्होंने पत्र लिखने का उपक्रम किया, किन्तु स्थिर चित्त से वे कुछ भी लिख नहीं पाती थीं। विरहाग्नि उनके भीतर प्रज्वलित थी और उस विरहाग्नि के कारण स्याही सूख जाती थी, कागज झूलस जाता था। इस प्रकार गोपियाँ पत्र लिखना चाहती तो हैं पर लिखने में सफल नहीं होतीं। उद्भव इस दृश्य को देख रहे थे किन्तु उन्हें उह मथुरा वापस आना था इसलिए ब्रजवासियों की कोई सहायता से कर नहीं सकते थे। ब्रजवासी विरह-नातर थे। उद्भव को वापस जाते दृष्ट कुछ उसके पीछे चल पड़े, कोई अपना सदेश बहने को आतुर हो उठे। उद्भव के प्रस्थान करते ही ब्रज मडल में भयंकर उथल-पुथल हो उठी। जड़ पदार्थ भी चलायमान हो एये उनमें विचित्र प्रकार की हलचल देखने में आईं।

जब उद्भव गोकुल में आये थे तब उनका मन ज्ञानोपदेश के लिए पूरी तरह संयत था। वे गोपियों को निगु ण ब्रह्म की सत्ता का ज्ञान कराने आये थे। किन्तु उनका ज्ञान विगमन अहंकर श्रंजंगनाओं के प्रेम को देखकर विलीन हो गया, वे गोपियों की भाँति प्रेम भाग के पथिक बन गये। पीटते नमय जाक मन प्रेम

सरोवर की तरफा मे डूबा हुआ था। उनके पैर उठ नहीं रहे थे। सारथी की सहायता से रथ का मगावर उद्व चल तो पडे लेकिन उनके भीतर प्रेमाशु उमड रहे थे और बार-बार उनका मन गोकुल की कुज गलियो मे लौटने को करने लगा। उद्व ने व्रजवासियो से प्रेमाशुपूरित गद्गद भाव से विदा मागी और मन मे घोर कष्ट का अनुभव करते हुए, उच्छवास पूरित वाणी मे वचन बोलते हुए निस्तब्ध, निश्चल भाव से चल पडे। उद्व ने व्रज माग मे यह अनुभव किया कि उनका मन निगु णोपासना मे मुक्त हो गया। जिस प्रकार आयुर्वेद शास्त्र मे पार को शोधने के लिए गधक का रासायनिक गुण मिलाकर शोधा जाता है। यहा पारा निगु ण भक्ति का और गधक आदि पदाय सगुण भक्ति के प्रतीक है। उद्व के अन्त करण को गोपिया ने अपने प्रेम मदेश मे शुद्ध और निमल बनाकर ज्ञान-मा से हटा कर प्रेम माग पर आरुढ कर दिया। उद्व ने मन मे ज्ञान दप से उत्पन्न अहकार दर हो गया। वे बहुत लज्जित हो कर वापस आये।

उद्व के आगमन का समाचार मुनकर श्रीकृष्ण बहुत शीघ्रता के साथ उनके पास पहुचे। उनके मन मे उद्व मे व्रजवासियो के कुशल क्षेम पूछने की इच्छा थी और उद्व भी श्रीकृष्ण को व्रज का समाचार देन को व्याकुल थे किन्तु दोनो की मानसिक स्थिति अशांत थी। कोई भी भली भाति बोलने का साहस नहीं जुटा पा रहा था। उद्व की ता मानसिक और शारीरिक दोनो ही स्थितिया चिन्ता जनक हो रही थी। जा बहुत स भेंट उपहार व्रजवासियो ने कृष्ण के लिए दिए थे, उद्व उहे भी सम्भाल नहीं पा रहे थे। यशोदा ने श्रीकृष्ण के लिए मक्खन और राधा ने वासुदेवी भेजी थी। श्रीकृष्ण ने उद्व की यह मन स्थिति देख कर सब कुछ समझ लिया और प्रेम से विह्वल होकर वे उद्व से लिपट गये। उधर उद्व की आँखो से अविरल अश्रु प्रवाह हो रहा था। इन अश्रुओ को कृष्ण अपने पीताम्बर से पोंछ कर अपने नेत्रो से लगा कर मुदित हो रहे थे। श्रीकृष्ण व्रज के समाचार जानने को वेचन थे किन्तु उद्व कुछ भी कहने की स्थिति मे नहीं थे। धीरे धीरे चित्त को स्थिर कर उद्व ने कहना शुरू किया—'हे कृष्ण मैं यहा मे ज्ञान की गठरी लेकर बडे अभिमान के साथ व्रज को गया था। वहा पहुच कर मैंने गोपियो की विरह-याकुल दशा देखी तो मेरा सारा ज्ञान गव समाप्त हो गया। मेरी सारी चातुरी अपने आप विलीन हो गयी। एसी विरहाग्नि की ज्वाला मैंने अपने जीवन मे कभी नहीं देखी थी। यह विरहाग्नि तो कालिय नाग की विषज्वाला से भी बढ कर है। बरसाने मे वर्षा का पानी शीतलता नहीं पहुचाता वह तो जलाने और झुलसाने वाला जल है जिसमे गोपिया झुलस रही है।'

उद्व न बडे स्पष्ट शब्दा मे श्रीकृष्ण से कहा कि जो नानोपदेश मैं ले गया था, वह व्रज मे किसी को भी प्रीतिकार नहीं लगा। मैं तो अपना ज्ञान गवा कर व्रज रज का साथ ले आया हूँ, यह व्रजरज ही अब मेरी सम्पत्ति है। मैंने गोपियो



के प्रेमाश्रु प्रवाह को देखा है। लगता है कि यदि यह प्रवाह जारी रहा तो मथुरा नगरी भी इसमें बह जायेगी। मैं तो इन प्रेमाश्रु प्रवाह में स्थिर नहीं रह सका। मेरे पैर उखड़ गये और मैं भाग कर मथुरा आ गया। मरी विनम्र प्रार्थना है कि गोपियों के वृष्ट को दूर करने के लिए अविलम्ब व्रज गमन करें और गोपियों की विरहान्नि का शमन करें। तो मैं केवल गोपियों की विरह दशा बताने गाकुल से यहाँ आया हूँ। अथवा मेरी इच्छा तो वही कुटिया बना कर बसने की थी। आपके दर्शन की अभिलाषा और व्रज की दशा का समाचार दन ही मैं व्रज से वापस आया हूँ।

उद्धव की इस स्थिति का वर्णन करने के बाद अन्तिम छंद में रत्नावर जी ने साग रूपक द्वारा गोपियों की दशा को सूयकान्तमणि के रूप में प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार शुद्ध किये हुए काँच का ढाल कर सूयकान्त मणि बनती है, उसी प्रकार निगुण ज्ञान, नियम समय आदि मलो से रहित प्रेम में डुबा कर सूयकान्त मणि बनाकर उद्धव को भेजा गया है। सम्पूर्ण छंद में सूयकान्त मणि तैयार करने की विधि का वर्णन है और वह उद्धव के नये रूप का व्यवहृत करता है। इस छंद पर उद्धव शतक समाप्त हो जाता है। यही इस ग्रन्थ का तीसरा और अन्तिम सोपान है।

०००

## उद्धव-शतक में चरित्र-चित्रण

उद्धव शतक महाकाव्य या खण्डकाव्य की शैली का क्याभाव्य नहीं है। इसमें पात्रों का जमघट भी नहीं है। यह केवल भाव और विचार प्रधान मुक्तक शैली की रचना है। हा, केवल विचार और भाव के वर्णन में जिन पात्रों का उपयोग कवि ने किया है, उनके शील स्वभाव और व्यवहार का यहाँ निर्देश किया जा सकता है। यदि पात्रों का उल्लेख करना आवश्यक हो तो तीन ही पात्र इसमें मिलेंगे। श्रीकृष्ण, उद्धव और ब्रजवासी गोप गोपियाँ। गोप गोपियाँ मन्द यशोदा और राधा का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है किन्तु उनकी किसी चरित्रगत विशेषता का उद्धव शतक में वर्णन नहीं है। गोपियों की प्रेम साधना और सगुण भक्ति ही समस्त गोप गोपियाँ की चरित्रगत विशेषता है। इसके अतिरिक्त उनके किसी क्रिया कलाप का वर्णन नहीं मिलता, स्वभावगत अनयता आदि का वर्णन अवश्य है।

### श्रीकृष्ण

उद्धव शतक काव्य में श्रीकृष्ण को जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है, वह सामान्य प्रेमी का रूप है। ब्रजवासियों से विमुक्त होकर श्रीकृष्ण मथुरा आ गया और मथुरा आकर राजवाज में व्यस्त हो गया। उस व्यस्तता में उह कुछ समय तक ब्रज का ध्यान नहीं आया। एक दिन यमुना में स्नान करत समय उनका हाथ में एक कमल का फूल आ गया जिसका नीचे-ऊपर का भाग मुरझाया हुआ था। इस कमल के फूल को जैसे ही सूखने की इच्छा से श्रीकृष्ण ने नाक से लगाया तो ही उह चक्कर आ गया और वे हाथ बंद कर अचेत हो गए। इस हाथ के साथ उह राधा का स्मरण हुआ आया क्योंकि उसी समय वक्ष पर बैठ एक तोत ने राधा शब्द का उच्चारण किया था। यह स्मृति जय प्रेम का वर्णन है। श्रीकृष्ण के मन में राधा और ब्रज के प्रति गहरा अनुराग था। यह भाव इस प्रथम छन्द में कवि ने व्यक्त किया है। कमल पुष्प के गंध से अचेत हुए की बात की टीकाकार

यह बह्वर राधा से जोड़ते हैं कि यह पूल राधा द्वारा सूष कर ममुना में फेंका गया था ताकि कृष्ण के हाथ पड़ने पर उन्हें राधा का स्मरण हो जाय। यह तुल्या नुराग का धोतक है।

श्रीकृष्ण के चरित्र की दूसरी विशेषता उद्धव शतक में प्रच्छन्न रूप से प्रकट की गई है। श्रीकृष्ण प्रेम भाग में विश्वास करते थे। गोपियों के साथ ब्रज में रास लीला, दानगीला, मानलीला आदि रचा कर उन्होंने सगुण गवित का पथ प्रशस्त किया था। उनके सखा उद्धव पानमार्गी थे। उन्हें योग साधना, तप, सयम, नियम, व्रत, जप आदि में विश्वास था। श्रीकृष्ण चाहते थे कि एक बार उद्धव ब्रज मंडल जाकर गोपियों के प्रगल्भ प्रेम को देखें और अनुभव करें कि कौन-सा भक्ति मार्ग वरेण्य है। इस विचार को क्रियामित करने की उन्होंने उद्धव को ब्रजभूमि में भेजा और अपना अभीष्ट पूरा किया। यह कृष्ण चरित्र की एक चतुराई है। स्वयं उन्होंने उद्धव से कुछ नहीं कहा वरन् उन्हें गोपुत्र भेज कर अपन आप वस्तु स्थिति से परिचित होने का अवसर दिया।

श्रीकृष्ण के चरित्र की तीसरी विशेषता जो उद्धव शतक में प्रकट होती है वह उनका ब्रज प्रेम है। ब्रज को श्रीकृष्ण मन प्राण में प्यार करते थे। ब्रज के वन, वन, निकुंज, लता पत्र, गिरि निम्बर, भूमि, सब कृष्ण के मन में गहरे बसे हुए थे। मथुरा में रहते हुए वहा का वभवभय वातावरण उन्हें राध नहीं साता उनका मन ब्रज की निकुंज गलियों और वन वीथियों में समाया रहा। उद्धव को ब्रज भेजते समय उनके मन में यह भाव था कि ब्रज का प्राकृतिक सौंदर्य अवश्य उद्धव को मोह लेगा, और यही हुआ भी।

## उद्धव

उद्धव शतक में सबसे प्रमुख भूमिका उद्धव की ही है। उद्धव को एक महाज्ञानी पुरुष के रूप में भ्रमर गीत परम्परा में स्वीकार किया गया है। उद्धव बहस्पति के शिष्य थे। बहस्पति विद्या ज्ञान और विवेक के भंडार माने जाते हैं। ऐसे ज्ञानी गुरु को पाकर उद्धव में भी ज्ञान और विद्या वैभवं का होना स्वाभाविक है। उद्धव अपने वार्तालाप में श्रीकृष्ण को प्रायः ज्ञानोपदेश दिया करते थे। सखा और सचिव होने के कारण श्रीकृष्ण को उद्धव का उपदेश सुनना पड़ता था। लेकिन श्रीकृष्ण के अन्तमन में यह बात बनी रहती थी कि केवल निगुणोपसना ही भक्ति का मार्ग नहीं है। सगुणोपासक भक्त भी अपने इष्टदेव की पूजा उपासना साकार रूप से कर सकते हैं। ब्रज की गोपियों की प्रीति को श्रीकृष्ण बहुत ऊंचा स्थान देते थे। इसलिए उद्धान उद्धव को ब्रज भेजा था कि वह ब्रज में जाकर एक बार गोपियों की मानसिक स्थिति से परिचित हो सके और यह भी जान सके कि भक्ति का एक मार्ग प्रेमाभक्ति भी है। उद्धव के चरित्र चित्रण में रसनाकर जी ने यह प्रारम्भ के पदों में दिखाया है कि उद्धव ज्ञानी पुरुष हैं और श्रीकृष्ण के सखा

होने के कारण वे उहे समझाने का अपना अधिकार भी समझते हैं। श्रीकृष्ण को उद्धव ने बहुत ही चातुरी से समझाना चाहा है कि व गोपियों के प्रेम प्रपंच में न फसें। उन्होंने हाथी को पचड़ने और जाल में फसाने की प्रक्रिया की बात कह कर कृष्ण को समझाया और कहा कि पचतत्वों से निर्मित इस ससार में ब्रह्म ही एकमात्र वास्तविक सत्य है। वेद शास्त्र सब इसी ब्रह्म का निरूपण और प्रतिपादन करते हैं। सयोग और वियोग का दुःख कल्पित है। ससार मिथ्या है, क्षण भंगुर है, नाशवान है। यह उपदेश उद्धव के ज्ञान से प्रसूत ही थे किन्तु कृष्ण पर उनका कोई प्रभाव नहीं हुआ।

उद्धव ने व्रज में पहुँचकर गोपियों को भी यह ब्रह्म ज्ञान का निगुण उपदेश दिया। उद्धव के चरित्र की विशेषता यह है कि वह ज्ञान माग को भक्ति का श्रेष्ठ माग समझते थे और उसे तक प्रमाणों से सिद्ध भी करना चाहते थे। उनकी युक्तियों में ज्ञान का मम है जो एक बार तो श्रोता को आवृष्ट करता ही है। किन्तु उद्धव चरित्र की दूसरी एक और विशेषता है जो कविवर रत्नाकर ने उद्धव शतक में स्पष्ट रूप से दिखा दी है। उद्धव ज्ञानी है, लेकिन सूरदास के उद्धव की तरह शुष्क और निमग्न नहीं है। रत्नाकर जी के उद्धव भावुक भी हैं, सहृदय भी है सरस भी है और विरह-प्रेम के प्रशंसक भी हैं। गोपियों की विरह कातर स्थिति उहे गहर अन्तस्त्रल में छू लेती है। वे सहृदय होकर पसीज उठते हैं। प्रेमाश्रु विगलित होकर गोपियों की व्यथा को अपनी व्यथा बना लेते हैं। व्रज से लौटते समय उनका ज्ञानदप विलीन हो जाता है और वे एक सहृदय प्रेमी व्यक्ति के रूप में श्रीकृष्ण को गोपियों की स्थिति से परिचित कराते हैं। उद्धव शतक के अतिम छंद में उद्धव का सामान्य मानव रूप ही पाठक के सामने आता है। दर्पोद्धत ज्ञानी रूप नहीं। यह महान परिवर्तन मानवीय गुण प्राक्वता का ही परिचायक है।

## गोप-गोपी

उद्धव शतक में व्रजवासी गोप-गोपिया के स्वभाव के चित्रण में रत्नाकर जी ने उनका उत्कट प्रेम और तुल्यानुराग का बड़े विस्तार से वर्णित किया है। अक्रूर श्रीकृष्ण का मथुरा लं जान क लिए आये ता गोपियां न उसका निषेध किया था। यह सदम उद्धव शतक में प्रत्यक्ष रूप से कही नहीं आया है किन्तु उद्धव के आने पर गोपियों ने इस भाव का व्यक्त किया है। गोपियों ने पहले ता यह समझा कि उद्धव कोई अच्छा सदेश लेकर आये है किन्तु बाद में उहे शका हुई कि यह अक्रूर के भेजे हुए हैं। अक्रूर के कृत्य गोपियाँ बढोर समझती थी, इसलिए उद्धव व प्रति भी उनका मन सशय था।

गोपिया श्रीकृष्ण प्रेम में पूरी तरह डूबी हुई थी। श्रीकृष्ण के सगुण, माकार रूप से उनका अनन्य प्रेम था। निगुण, निराकार ब्रह्म रूप कृष्ण से उनका कोई सरोकार नहीं था। अतः उद्धव के ज्ञान मार्गों उपदेश पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। निगुण ब्रह्म के अस्वीकार में गोपियाँ जा तक देती हैं, वे सब उनके प्रेम को प्रकट करने वाले तक हैं। गोपियाँ किसी भी प्रलोभन को स्वीकार नहीं करती, वे अनन्य भाव से श्रीकृष्ण का पाना चाहती हैं। उद्धव के मार उपदेश उनके आगे व्यर्थ माबित होना हैं। गोपियाँ निश्चल स्वभाव की हैं। भोली भाली हैं। ब्रज को छोड़ कर कही जाना नहीं चाहती। उनका प्रेम एकनिष्ठ है। श्रीकृष्ण के प्रति जिस निष्ठा-आस्था से वे प्रेम रखती हैं, वह उद्धव जस ज्ञानी व्यक्ति को भी द्रवित कर देता है। निगुणोपासना के चण्डन में वे जो युक्ति-सक प्रस्तुत करती हैं वे देखने में स्थूल प्रतीत हान हैं किन्तु उनमें अपन विश्वास की दृढ़ता है। उद्धव के सभी उपदेश उनके लिए थोड़े नानोपदेश हैं जो गोपियाँ के मम स्थूल को छू नहीं पाते।

गोपियों के स्वभाव में रूपगविता होने का भी संकत है, श्रीकृष्ण के प्रति अपने प्रेम का बणन करत समय वे अपने रूप सौंदर्य की बात भी अस्फुट रूप से कह देती हैं। प्रेमगविता होना तो स्त्री के लिए उचित है किन्तु रूपगविता होना कुछ अच्छा नहीं लगता, किन्तु नारी स्वभाव में यह गव प्रायः पाया जाता है।

सक्षेप में, चरित्र चित्रण की दृष्टि से उद्धव शतक में न तो पात्रों का जमघट है और चरित्रों का गहरा, दुर्बोध और जटिल चित्रण। तीनों पात्र अपनी-अपनी विशेषता के साथ इस काव्य में पाठकों के सामने आते हैं। सगुण और निगुण उपासना का द्वन्द्व भी पात्रों के संवादों में उभरता है। चारित्रिक गुणों के प्रस्फुटन का इसमें विशेष अवकाश नहीं है क्योंकि कथा का एक ही बिंदु है। उपक्याए भी अन्तर्गत प्रसंग इसमें नहीं है। कृष्ण का चरित्र तो प्रारंभ के दस-बारह छंदों में समाया है जहाँ वे अपनी विरह विदग्ध मन स्थिति का बणन करत हैं। ब्रज प्रेम को प्रदर्शित करने में ही उनका चरित्र की उदात्त प्रेम भावना उदघाटित होती है। उद्धव अपने ज्ञान और उपदेश के कारण एक विद्वान पंडित के रूप में पाठकों के सामने आते हैं। पहले ऐसा लगता है कि बृहस्पति का यह शिष्य शुष्क ज्ञानमार्गी होगा, हठी और दुराग्रही होगा लेकिन उद्धव शतक के अंत में उद्धव सहृदय, भावुक और प्रेमी व्यक्ति का रूप धारण कर लेते हैं। उनके हृदय का परिवर्तन कृत्रिम न हाकर प्रेम के प्रभाव की स्वाभाविक परिणति है।

गोपियाँ और ब्रजवासी इस काव्य में उत्कृष्ट कोटि के अनन्य प्रेमी के रूप में वर्णित हैं। गोपियाँ भोली भाली हैं किन्तु उद्धव के ज्ञान और निगुण उपदेश का न मानने में सर्वप्रथम एव दृढ़ आग्रही हैं। उनकी अनन्यता निष्ठा आस्था इस काव्य में चरम उत्तर पर है। इस प्रकार चरित्र चित्रण की दृष्टि से यूनानवादीय रहने पर

भी बवि ने इन पात्रों के चरित्र की विशेषताएँ अवश्य स्पष्ट कर दी हैं।

गापिया के चित्रण में असूया और स्त्री सुलभ ईर्ष्या का भाव भी रत्नाकर जी ने उभारा है। गोपिया श्रीकृष्ण के प्रति सशक होकर कुब्जा के प्रति आकर्षण के की बात कहती है। उनका आरोप है कि कुब्जा ने अपने प्रेमपाश में श्रीकृष्ण को फँसा लिया है इसलिए वे मथुरा से वापस नहीं आ रहे हैं। इस बात को उपालभ शैली से गापियो ने पाच छह छंदा में बड़ी मार्मिक शैली में व्यक्त किया है। नारी स्वभाव की यह दुबलता गोपिया के चरित्र में स्पष्ट हो गई है।

० ०

## उद्धव-शतक मे दार्शनिक विचार

उद्धव शतक शृंगार प्रधान काव्य है। गोपिया व कृष्ण प्रेम को उदात्त भूमि पर स्थापित कर ज्ञान, योग, निगुण आदि साधनों से श्रेष्ठ सिद्ध किया है। अतः किसी दार्शनिक मतवाद या गदार्थिक विचारधारा का वर्णन करना इसका मूल उद्देश्य नहीं है। किन्तु प्रेमाभक्ति की उत्कृष्टता और निगुणोपासना से श्रेष्ठता सिद्ध करने के सद्भक्त में दार्शनिक विचारों का इस काव्य में समावेश हुआ है। भ्रमरगीत परम्परा में सूरदास और नन्ददास के भ्रमरगीता में भी यह दार्शनिकता पूरी तरह लक्षित की जा सकती है। नन्ददास की गोपिया की तत्कपद्धति तो दशन की भित्ति पर ही आश्रित है और वे उद्धव को अपनी सगुणोपासना की श्रेष्ठता सिद्ध करते समय ब्रह्म जिज्ञासा की चर्चा दशन के परिप्रेक्ष्य में ही करती है। सूरदास की गोपियों में वैसी तीक्ष्ण तर्क बुद्धि तो नहीं है किन्तु उद्धव के ब्रह्म ज्ञान को अस्वीकार करते समय वे भी दशन की मर्यादा का पालन करती हैं। वस्तुतः यह सद्भक्त भागवतपुराण में जुड़ा हुआ है और इसमें दार्शनिक विचारों का समावेश अथ कवियों द्वारा किया गया है। उद्धव शतक का कवि भी इस परम्परा से जुड़ा रहा है और उसने भी अनेक कवित्तों में उद्धव के द्वारा दशन की गहन-गभीर बातें कहलाई हैं।

उद्धव शतक में जिन दार्शनिक विचारों का समावेश कवि ने किया है उसका मूलाधार निगुणोपासना ही है। निगुण ब्रह्म की जिज्ञासा में जो योग, ध्यान, जप, तप आदि विहित हैं उनका भी वर्णन उद्धव ने किया है। वेदान्तदशन के अनुसार इस दृश्यमान् जगत में एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है। जो चक्षुगोचर है वह मिथ्या है। अज्ञान, अविद्या या माया के कारण जीव को इस पदार्थ जगत की सब बातें मिथ्या प्रतीत होती हैं। वास्तविक दृष्टि से ब्रह्म और जीव, ब्रह्म और जगत पथक् अस्तित्व नहीं रखते। 'ब्रह्म सत्यं, जगत मिथ्या, ब्रह्ममाजीवैवनाम्पर। सर्वस्वत्विदं ब्रह्म नहं नानास्ति विचिन।' के अनुसार उपासना के लिए किसी सगुणसाधार ईश्वर या देवता की कोई आवश्यकता नहीं। यह ठीक है कि जीव को अपने चम

ब्रह्मणो से प्रत्येक पदार्थ का पृथक् अस्तित्व भासमान होता है किंतु तत्त्व यह पृथक्त्व है नहीं। जो दृश्यमान जगत् हमारे सामने है वह क्षणभंगुर है नाशवान है, प्रतिफल परिवर्तनशील है, अस्थायी और अयथाय है। यह दार्शनिक चिंतन निगुणोपासना का मूलाधार है और यही ज्ञानी उद्धव द्वारा इस प्रकार व्यक्त कराया है

पाचो तत्व माहिं एक सत्व की ही सत्ता सत्य  
 याही तत्व ज्ञान की महत्त्व श्रुति गायी है।  
 तुमती विवक् रतनाकर कही क्यो पुनि  
 भेद पञ्चभौतिक के रूप में रचायी है।  
 गोपिन में, आप में, वियोग और सजोगहू में,  
 एकै भाव चाहिए सचा ठहरायी है।  
 आपु ही सी आपुको मिलाप और विछोह कहा  
 मोह यह मिथ्या सुख-दुख सब ठायी है।

इस कवित्त में दार्शनिक विचार को सम्पूर्णता के साथ व्यक्त करके रत्नाकरजी ने स्पष्ट कर दिया है कि कृष्ण और गोप-गोपिया दो पृथक् सत्ता वाले जीव न होकर एक ही ब्रह्म के रूप हैं, दोनों में अभेद है अतः वियोग और सजोग की बात करना ही व्यर्थ है। यह दार्शनिक विचार अद्वैत वेदात् का ही सार है। इसी दार्शनिक तथ्य को उद्धव ने गोपिया के सामने भी प्रस्तुत किया है। विचार यही है किंतु मात्र शब्द भेद है। कवित्त सख्या ३१ में यही भाव है—

पच तत्व में जो सच्चिदानन्द की सत्ता सो तो  
 हम तुम उनमें समान ही समोई है।  
 कहे रत्नाकर विभूति पचभूत हू की  
 एक ही सी सकल प्रतिभूतिन में पोई है।  
 माया के प्रपच ही सी भासत प्रभेद सब  
 काच फलकनि ज्या अनक एक सोई है।  
 देखी भ्रम पटल उधारि ज्ञान आविनि सी  
 काह सबही में काह ही में सब कोई है।

अद्वैत ज्ञान की तात्त्विक दृष्टि यही है कि समस्त पञ्चभौतिक पदार्थों में जीव और जड़ जगत् में सच्चिदानन्द ब्रह्म की सत्ता समान रूप में व्याप्त है। माया का प्रपच, जिस दार्शनिक शब्दावली में अभ्यास कहते हैं, भ्रम उत्पन्न करके एक को अनेक रूप में प्रतिभासित करता है। काच फलक में जैसे एक मूर्ति अनेक रूप में दृष्टिगत होती है वैसे ही एक ब्रह्म इस जगत् में अनेक रूप में लक्षित होता है। यदि ज्ञान की आँखें खोल कर हम इस माया के भ्रम पटल को हटाकर देखें तो कृष्ण में ही सब दिखाई देंगे और समस्त गोचर जगत् में कृष्ण होंगे। यह दिव्य



दृष्टि यथाय चान व्रता जितासा म हो गुनभ हो सतता है । इसी भाव को अगत वचित्त म रत्तावर जो न और अधिव स्पष्ट शब्दा म व्यक्त किया है—

साईं काह, सोईं तुम सोइ सबही ह लगौ,  
 घट घट अंतर अनंत स्वामघन को ।  
 वने रत्तावर न भद भावना सो मरो  
 वारिधि जो बूढ क विचारि विधुरन को ।  
 अत्रिचल चाहन मिलाप तो विलाप त्यागि  
 जोग जुगती करि जुगावी चान धन को ।  
 जीव-आतमा की परमात्मा में लीन करी  
 छीन करी तन को, न दीर करी मन मां ।

मूल भाव भी दृष्टि स यह वचित्त भी उसी दार्शनिक विचार का समथक है जो पहले वचित्त का है किन्तु उदाहरण म कुछ अंतर है । समुद्र और समुद्रजल की बूद म वास्तविक भेद नहीं होता, दोनों ही समुद्रजल हैं । यदि वास्तव म गोपिया वृष्ण के साथ मिलन की जाकाशी है तो उह वियोग विलाप त्याग कर योग ध्यान द्वारा चान माग से अपनी आत्मा का परमात्मा मे लीन करने का उपक्रम करना चाहिए । वियोग क कारण शरीर को क्षीण करना और विलाप करके मन का हीन बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है । यही दशन-पथ गोपियो को श्रीकृष्ण से मिला सकता है । प्रेम और श्रु गार की लौकिक भूमि पर मिलन मिथ्या है ।

उद्धव के ग्रह्य चान विषयक दार्शनिक विचार उद्धव शतक मे पूर्वपक्ष मे ही गहीन है । गोपिया इस ज्ञान माग के दशन को अस्वीकार कर देती है । उनके पास श्रीकृष्ण मिलन का अपना दशन है, अपनी आस्था, निष्ठा और अनय प्रेम का माग है जो उह इन उपदेशो के ग्रहण करने से रोक्ता है । गोपिया चानी नहीं, प्रेममार्गी है । प्रेमाभक्ति का अपना सगुण दशन है और उस सगुण भक्ति के दशन को गोपिया उद्धव के समय प्रस्तुत करते म जरा भी हिचकिचाती नहीं । प्रेमाभक्ति का यह माधुयभाव का दशन ही वास्तव म उद्धव शतक का सिद्धांत पक्ष है । इस सिद्धांत पक्ष के दशन का गोपियो ने बड़ी तर्काश्रित शली स प्रतिपादित किया है । गोपिया पहल तो उद्धव के चानमार्गी ब्रह्मज्ञान का सतक खडन करती है । खडन के उपरांत वे अपने सगुण भाव की स्थापना करने म तत्पर होती है । गोपिया उद्धव के चानोपपत्त क दार्शनिक मन्त्रय को सुनकर भी अनुसुना सा कर देती है । वे यह बताना चाहती है कि जिस गूढ-गभीर ब्रह्मज्ञान की बात तुम कह रहे हो वह हमारी अपत् बुद्धि के लिए दुर्बोध है । हम नहीं समझ सकी कि तुम किस दशन की हमसे चर्चा करत रहे हो । बहुत ही अबोध बनकर गोपिया अपा आराध्य प्रभी कृष्ण के विषय म एक सीधा प्रश्न उद्धव के सामने रख देती है ।

हे उद्धव ! यह बताओ कि हमारे प्यार वृष्ण मधुरा से कब लौटेंगे और कब हम उनका मुख देख सकेंगे ? हम यह भी बताओ कि वृष्ण मधुरा मक्या करत रहत है ? क्या कभी वह यमुना तट पर जाकर, घट वक्ष की छाया में बैठ, प्रफुल्ल मन से वासुरी बजात है ? यह प्रश्न सीधा सादा है कि-तु सगुण-साकार श्रीवृष्ण की प्रेम-मयी भक्ति का आधार है।

इस प्रश्न के बाद गोपिया अपनी तब-बुद्धि का प्रयोग करती हुई उद्धव के दार्शनिक मतव्या का समुक्तिन शली स खडन करना प्रारम्भ करती है। उद्धव न समुद्र और बूद का उदाहरण दकर दोनो का अभेद सिद्ध करना चाहा था। गोपिया इस अभेद को अपने तक से काटती हुई कहती हैं कि यदि समुद्र और बूद में अभेद मान लें तो समुद्र (वृष्ण) की असीमता म तो कोई अंतर नहीं पडता कि-तु अकिञ्चन तुच्छ बूद (गोपी) तो समाप्त हो जाती ह। अपना अस्तित्व छोकर हम एस अभेद को कैसे स्वीकार कर सकती ह ? अपन पथक् अस्तित्व की बात गोपिया ने क्वचित् सख्या ३७ म स्पष्टत कह दी ह। यह विचार शुद्धाद्वैत दर्शन के मेल म है, अद्वैत के नहीं। उद्धव न गोपिया से कहा था कि श्रीवृष्ण तो साक्षात् ब्रह्म है जो रूप, रस, गुणहीन है, उनका नन मूदकर ध्यान ही किया जा सकता है, उनका स्पश सभव नहीं है। गोपिया इसवे प्रत्युत्तर म उद्धव स कहती है कि जिस वृष्ण को तुम रूप रसहीन कहते ही उसी के रूप का ध्यान और रसा स्वाद की बात करना स्वय विरोधाभास है। इस विशाल विश्व मे व्याप्त जिस ब्रह्म को तुम अगोचर, अदश्य और अलक्ष्य कहत हो उस ह म किस प्रकार अपनी त्रिपुटी म समट कर ध्यान का विषय बना सकती है। यह निगुण तो हमारे लिए कष्टसाध्य ही नहीं असभव है।

उद्धव न गोपिया को मुक्ति प्राप्ति का साधन निगुणापासना बताया था। गोपिया इस मुक्ति की भी कामना नहीं करती। व स्पष्ट श-दा म कहती है— 'मुक्ति मुक्ता को मोल माल ही कहा है जब, मोहनलला प मन-मानिक ही चारि चुरी।' यहा मोती और माणिक्य का श्लष भी चमत्कार उत्पन्न करने वाला है। उद्धव ने ब्रह्म को रूप रसहीन अनग कहा था, गोपिया यहा अनग शब्द म कामदेव का अय ग्रहण करती हुई कहती है—एक ही अनग साध सब पूरी अब, और अग रहित अराधि करो है कहा ?

उद्धव ने जिस ब्रह्म का निरूपण किया था गोपिया उस अस्वीकार करती हुई जो मुक्ता देती ह वे उतनी सीधी, सरल और जाक्यक है कि उद्धव का गूढ दर्शन उनके समक्ष ठहर ही नहीं पाता। निरानार ब्रह्म ही यदि श्रीवृष्ण है तो वे बिना हाथ व गाय का दूध कस दुहगे, पैरों के बिना थिरक थिरक कर नाचेंगे कैसे ? बिना मुख के मक्खन कैसे छावेंगे, वासुरी कस बजावेंगे, बिना आध और कान वं प्रजवासियो की विपत्ति का कमे देखें और मुनेंगे। हे उद्धव ! तुम

हमे योगी बनाना चाहत हो लेकिन वियोग के भोग के भोगी हम किस प्रकार कम है। यह साधना भी तो कष्टपूर्ण ही है। इतना स्पष्ट कह देने के बाद कुछ आवश और त्रोध की मुद्रा मे भी गोपिया उद्व को फटकारती हुई-सी कहती हैं—

जोग को रमावँ औसमाधि को जगावँ इहा  
 दुख सुख साधनि सौं निपट निवरी है।  
 + + + +  
 चेरी हैं न ऊधौ ! काहू ब्रह्म के बवा की हम  
 सुधौ कहे देति एक काह की कमेरी हं।

गोपिया का दशन प्रेमाभक्ति पर आधृत सगुण-साकार भक्ति का दशन है। इस दशन को किसी एक खास दाशनिक मतवाद में बाधा नहीं जा सकता। वल्लभाचार्य ने जिस शुद्धादृत दशन का प्रतिपादन किया है वह भी गोपिया द्वारा वही स्पष्टत वर्णित नहीं है। इतना स्पष्ट है कि गोपिया अद्वैत दशन का खण्डन पूरी निष्ठा और दबता से करती है। उनके पास तक, युक्ति और प्रमाण का सबल है। उद्व के नानोपदेश से वे तनिक भी भ्रमित नहीं होती वरन प्रत्येक निगुण साधन का सटीक रूप से खंडन कर देती हैं। उद्व को समझाने के लिए उन्होंने बड़े अनुनय विनय भाव से कहा है कि तुम ब्रह्म सत्कार की लम्बी चौड़ी गूढ बात तो करते हो किंतु एक बार हमारी आय से यदि तुम कृष्ण के रूप माधुय को देख लेत तो शायद ऐसी बेतुकी बात न करते—

ऊधो ब्रह्म ज्ञान की वखान करत न नैकु  
 देख लेत काह जो हमारी अखिमान सौं।”

उद्व की दाशनिक विचारधारा में पातजल योगदशन का भी यत्र-तत्र पुट है। चित्तवस्तियों के निराध का उपदेश, जम्यास और वैराग्यसाधन का उपदेश, चित्त का वीतराग बनाने का उपदेश, अविद्या, अस्मिता राग-द्वेष का अभिनिवेश ही क्लेशजनक है आदि सब कथन योगशास्त्रनुकूल ही हैं। सक्षेप में, उद्व शतक में दो प्रकार की दाशनिक विचारधाराए मिलती हैं। पहली दाशनिक विचार धारा के समयक उद्व हैं जिस हम पूर्वपक्ष की विचारधारा कह सकते हैं। यह विचारदशन अद्वैतदशन-परक है। निगुण निराकार ब्रह्म का इसमें उपदेश है। दूसरी विचारधारा गोपिया की है। इसका दाशनिक आधार तो इतना पुष्ट नहीं है परन्तु भक्तिभाग की सगुणोपासना की प्रतिष्ठा अति सबल रूप से की गई है। यह सगुण भक्ति ही दशन का रूप ग्रहण कर लती है। अत हम हम उद्व शतक का सिद्धान्तपक्षीय दशन कह सकते हैं।

## उद्धव-शतक की भाषा

उद्धव शतक आधुनिक युग की रचना है किन्तु उसकी भाषा मध्यकालीन ब्रजभाषा है। आधुनिक युग में ब्रजभाषा की स्वीकार कर काव्य रचना करने वाले कवियों में रत्नाकर जी का स्थान मूढ्य है। रीतिकालीन कवियों ने ब्रजभाषा को परिष्कृत और प्रांजल बनाकर जो रूप दिया था उसे रत्नाकर जी ने और अधिक परिमार्जित, ललित, श्रुति मधुर एवं पवाहपूर्ण बनाया इसमें तनिक भी सन्देह का अवकाश नहीं है। रीतिकालीन केशव, देव, बिहारी, मतिराम, घनानन्द, पदमाकर आदि कवियों द्वारा जो ब्रजभाषा रत्नाकर जी को विरासत में मिली थी उसे अपनी प्रतिभा से और अधिक ललित एवं लावण्यपूर्ण बनाने में इनका योगदान भूताया नहीं जा सकता। उद्धव शतक की ब्रजभाषा में सौष्ठव की दृष्टि से जो सुघडता लक्षित होती है वह रत्नाकर जी की प्रतिभा का ही सुफल है।

जिस समय रत्नाकर जी काव्य रचना में प्रवृत्त हुए उस समय हिन्दा में भाषा के स्तर पर खड़ी बोली की स्थापित करने का आन्दोलन सफल हो चुका था। श्री अयाध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का प्रसिद्ध खड़ी बोली-काव्य 'प्रिय प्रवास' प्रकाश में आ चुका था। मुक्तक रचनाओं में खड़ी बोली स्वीकृत भाषा के रूप में अपने पर जमा चुकी थी। ब्रजभाषा में रचना करने वाले भी ब्रजभाषा छोड़ कर खड़ी बोली की ओर खिंचने लगे थे। ऐसे भाषा-सन्नान्ति के समय रत्नाकर जी ब्रजभाषा की पताका फहराते हुए अडिग भाव से जम खड़े थे और ब्रजभाषा को और अधिक सक्षम भाषा के रूप में प्रस्तुत कर रहे थे। उस युग में रत्नाकर जी ही एकमात्र रचनाकार थे जो ब्रजभाषा का दामन धामे अविचल भाव से ब्रजभाषा में काव्य-सृजन करने में पूरी निष्ठा के साथ तल्लीन थे।

ब्रजभाषा अपने पदलालित्य, अथगौरव, माधुर्य और श्रुति पेशलता के कारण मध्य युग में भारत और सतों द्वारा रीतिकाव्य प्रणेता आचार्य कवियों द्वारा तथा स्वच्छन्दतावादी शृ गारी कवियों द्वारा समान रूप में समादृत हुई। रत्नाकर जी

ने इसी रिक्त को ग्रहण किया और ब्रजभाषा को अधिनाधिक सवारने-सजाने का भरसक प्रयत्न किया। कहना न होगा कि उनके भाषा विषयक प्रयत्नों से ब्रज भाषा में और अधिक लोच, लावण्य तथा सम्प्रेषणीयता आई। रत्नाकर जी का प्रयास निरंतर यह रहा कि परम्परागत ब्रजभाषा को साहित्यिक घरातल पर पूरी तरह स्थापित करने के साथ लोकप्रिय बनाया जाय। रीतिवालीन कवियों ने ब्रजभाषा को प्रौढ अवश्य बनाया था किन्तु उम समय के कवियों ने शब्द चयन, वाक्यविन्यास बतनी और त्रिया कारण प्रयोग में एकरूपता पर ध्यान नहीं दिया। भाषा में प्रौढता और परिपक्वता आने पर भी साहित्यिक स्तर पर एकरूपता का अभाव खटकता रहा। रत्नाकर जी ने इस अभाव को दूर करने का स्तुत्य प्रयास किया। यदि शुद्ध, सुसंस्कृत, परिमार्जित एवं प्रांजल ब्रजभाषा का रूप देखना हो तो रत्नाकर जी की ब्रजभाषा में वह देखा जा सकता है। उसका भी सवश्रेष्ठ रूप उद्धवशतक में लक्षित होगा।

रत्नाकर जी भाव प्रकट करने में भाषा की शक्ति को प्रमुख स्थान देते हैं। उन्होंने हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के सभापति पद से दिये गये भाषण में भाव और भाषा के पास्परिक सम्बन्ध को इस प्रकार व्यक्त किया है

‘काव्य के विषय में यह निर्विवाद मत है कि वह ऐसा वाक्य है जिसके सुनने अथवा पढ़ने में सहृदय को एक अलौकिक आनन्द की प्राप्ति हो। उसमें रमणीयता के मुख्य दो कारण होते हैं। एक तो किसी ऐसे विषय या भाव का वर्णन होना जो स्वभावतः ही मनुष्य जाति को अलौकिक आनन्दप्रद है, दूसरे किसी विषय या भाव के व्यक्त करने का कुछ ऐसा ढंग जिसमें सुनने वाले का चित्त प्रसन्न हो जाय। जिस काव्य में यह दोनों बातें हों, वह परम श्रेष्ठ है, पर जिसमें इन दोनों में से एक भी न हो उसे तो काव्य कहना ही व्यर्थ है।’ कथन की शली भाषा पर निर्भर करती है और भाषा मुष्टु प्रयोग, व्याकरण और शब्दचयन पर। रत्नाकर जी ने इसका निरंतर ध्यान रखा है।

यह ठीक है कि ब्रजभाषा रत्नाकर जी की मातृभाषा नहीं थी। रत्नाकर जी ने पूरे रचित काव्यों का अनुशीलन कर अभ्यास द्वारा इसका अजन किया था। अर्जित भाषा होने पर भी इसमें निपुणता प्राप्त कर रचना-कौशल से भाषा को अनकृत और व्यवस्थित बनाने का श्रेय रत्नाकर जी को है। ‘अपने अध्ययन के बल पर रत्नाकर जी ब्रजभाषा की नसर्गिक प्रकृति से इतना अधिक परिचित हो गये थे कि संस्कृत अरबी, फारसी तथा बनारसी बोली के शब्दों की ब्रजभाषा में टालन में उन्हें कठिनाई नहीं होती थी। उनकी रचनाओं में विभिन्न भाषाओं के शब्दों की मिलावट है कि उनके कारण ब्रजभाषा की प्रकृति में कहीं अन्तर नहीं पड़ा है। किसी भाषा विशेष की प्रकृति का जक्षण रखते हुए उममें अन्य भाषाओं के शब्दों का मफलतापूर्वक समावेश कर देना साधारण बात नहीं है,

परंतु रत्नाकर जी के लिए यह कठिन काय भी सरल थी। अरबी-फारसी के शब्दों को ग्रहण करने भी उनकी भाषा विलुप्त नहीं हुई है। (रत्नाकर जी की प्रतिभा और कला प० २३४)

रत्नाकर जी के घर की भाषा बनारसी थी। ब्रजभाषा में उच्चतर शब्दों के प्रयोग काशी की बोली में प्रचलित शब्दों को रत्नाकर जी ने साक्षर रूप में ग्रहण किया है। उद्धव शतक में भी ऐसे बोलचाल के शब्द मिल जाते हैं। पवारि, उदवामना, उधराना, अगजना आदि शब्द बनारसी बोली के हैं जिन्हें ब्रजभाषा में रत्नाकर जी ने पूरी तरह खपा दिया है। भाव और भाषा का प्रत्यक्ष संबंध है। यदि कोमल भाव है तो रत्नाकर जी कोमलकांत पदावली का प्रयोग करते हैं और यदि पुष्प भाव है तब वितक या दाशनिक चिन्तन है तो भाषा भी तदनुसार गूढ़ और गम्भीर होने के साथ कठोर हो जाती है। गोपिया उद्धव की उपदेशवार्ता सुनकर जिस स्थिति में पटुच गड़ बह धवराहट और व्यथा की स्थिति है। इस दशा के वणन में कोमल शब्दों का ही प्रयोग समीचीन माना जायगा। रत्नाकर जी के अनेक छंद उद्धव शतक में इसी भाषा में लिखे उपलब्ध हैं।

सुनि सुनि ऊधव की अकह कहानी कान  
कोऊ घहरानी, कोई धागहि धिरानी है।  
कहे रतनाकर रिसानी बररानी कोऊ  
कोऊ विलखानी, विफलानी, विथफानी है।

इस कवित्त में सगीत का प्रवाह शब्दों की लोच द्रष्टव्य है। समस्त क्रियापद एक ही लय-ताल में बधे प्रवाह में बह जाते प्रतीत होते हैं। कणकटु शब्दों का पूण बहिष्कार है। ब्रजभाषा की नैसर्गिक प्रकृति के अनुकूल शब्दों का चयन और विन्यास के लिए उद्धव शतक अप्रतिभ निदर्शन है—

चित्ता मुनि मजुल पवारि घूरि धारनि मे  
काच मन मुकुर सुधारि रखिबौ कहौ।

+ × ×

एते बडे बिम्ब माहि हेर हू न पय जाहि  
ताहि त्रिकुटी मे नन मूदि रखिबौ कहौ।

सगीतात्मक अनुप्रास विधान का चातुर्य तो रत्नाकर जी के वाच्य-शैली का एक उत्कृष्ट गुण है। अनुप्रास शब्दालंकार है किंतु उद्धव शतक में वह भाषा का सहज प्रवाह बनकर प्रयुक्त हुआ है।

रत्नाकर जी की ब्रजभाषा का मौल्य उसके व्याकरण सम्मत, लौकिक दृष्टि में प्रयोगानुकूल और अभिव्यजना सौंदर्य के कारण बेजोड़ कहा जा सकता है। उद्धव शतक में अनेक शब्दों का प्रयोग है जिसमें सौंदर्य की सृष्टि रत्नाकर जी की पदयोजना के कारण ही हुई है। यदि उन शब्दों को उलट कर के साथ

इधर-से उधर कर दिया जाय तो काव्य सौंदर्य नष्ट हो जायगा। ब्रजमण्डल की प्रशंसा करते रत्नाकर जी ने उद्धव के मुख से यह कवित्त कहलाया है। इसका भाव-सौंदर्य शब्द सम्पत्ति से ही निखरा है। उद्धव कहते हैं—

ॐ छावते कुटीर कहूँ रम्य जमुना कँतीर

गौन रोन रेती सो कदापि करते नही।

वहै रतनाकर विहाय प्रेम-गाथा गूढ

स्रोत रसना मे रस और भरते नही।

गोपी म्वाल बालनिके उमडत आमू देखि

लेखि प्रलयागम हूँ नैकु डरते नही।

होती चितचाव जो न रावरे चितावन की

तजि ब्रज-गाव इतै पाव घरते नही ॥

उद्धव ने ब्रज में पहुँच कर गोपियाँ की विरहज्वर स्थिति को प्रत्यक्ष देखा तो वे स्वयं स्तब्ध एवं चकित रह गये। समझ ही नहीं सके कि इनसे किस भाषा में क्या बात की जाय। उस स्थिति का शब्द चित्र द्रष्टव्य है—

दीन दशा देखि ब्रजवालनि की ऊधव की

गरि गौ गुमान पान गौरव गुठाने से।

वहै रतनाकर न आण मुप बन नैन

नीर भरि ल्याए भण सकुचि सिहाने से

गूने न सये स सखबके न सके से यव

भूल मे भ्रमे से भभरे से भकुवाने से।

हौले से हले से हूले-हूले से हिये मे हाय

हारे स हरे से रह हेरत हिराने से।

उपप्लुत कवित्त में रेखांकित शब्दांश ब्रजभाषा की छटा लभित करने योग्य है। ये सभी शब्द नामांश बोलचाल की भाषा के हैं। साहित्यिक चमक इनमें नहीं है किन्तु शब्दों को पूरे सदम में साथ उजागर करने की इनमें विलक्षण शक्ति है। गुठाने, मिहाने, सखबके, सवे, भभरे, भकुवाने, हौले, हूले-हूले, हिराने आदि शब्द ठेठ ब्रजभाषा के हैं। इनका अपना सहज सौंदर्य है जो अभिजात्य के मेल में न होना पर भी अभिव्यक्ति को भाव के सदम में सम्प्रेषणीय बना देता है। ब्रजभाषा का भाषुय इसी औचलित्वता की व्यापक आयाग देता है।

मुविन मुक्ता की मोन माल ही कहा है जब

माहन सला प मन मानि ही वारि चुबी।

मन्थार के अनुश्रवण की छटा को जितना सहज, स्वाभाविक इन कवित्तों में रत्नाकर जी ने बना दिया है वह ब्रजभाषा के प्रवाह में ही सम्भव है। मन्थार की मात बार आवृत्ति न ता शृनिम लगती है और न आश्चर्यपूर्ण अलङ्कृति ही इस कहा

जायगा। यह तो ब्रजभाषा की नैसर्गिक प्रकृति है। उद्धव की मोठी फुटकर रत्नाकर ने हुए गोपिया कहती हैं—चेरी है न ऊधा। काहूँ ब्रह्म के ववा की हंम, सुधी कहे देति एक कान्ह की कमेरी है। कान्ह की कमरी तो ब्रजभाषा में ही सगत है, खड़ी बोली या किसी अन्य बोली में वह कमेरी शब्द खपेगा ही नहीं। दासी, सेविका आदि के साथ कमेरी को बिठाने का चातुर्य रत्नाकर जी की कलम में ही है। रत्नाकर जी ने परिचारिका-जसे अभिजात शब्द का भी इसी अर्थ में प्रयोग किया है कि तु कमेरी-जैसी अभिव्यक्तता उसमें नहीं है।

उद्धव गोपिया से मिलकर मधुरा वापस जाने लग। उन्होंने गोपिया से आग्रह किया कि वे सब अपना सदेश कृष्ण के नाम लिखकर उह द दें। गोपियां पत्र लिखने बठी किन्तु किसी को भी लिखने का उपक्रम नहीं सूझा। मन में कोई बात स्फुरित नहीं हुई, हाथ रुक गया। विरहातप से जलती हुई गोपियों की विचित्र दशा हुई, उसका वणन उद्गात्मक पद्धति से कवि ने किया है। उद्गात्मक पद्धति यद्यपि रत्नाकर जी का प्रिय नहीं थी किन्तु ब्रजभाषा के अनुकरण से वे विहारी को सर्वश्रेष्ठ मानते थे और बिहारी उद्गापद्धति के चमत्कारी कवि हैं अतः उनका प्रभाव उद्गात्मक शैली पर पड़ना स्वाभाविक है।

दावि दावि छाती पाती लिखन लगायो सबै  
 ध्योत लिखिबैं को प न कोऊ करि जात है।  
 कहै रत्नाकार फुरति नाहि बात कछु  
 हाथ धर्यो ही तल थहरि थरि जात है।  
 ऊधा के निहोर फेरिनकु धार जोरै पर  
 ऐसो अत ताप को प्रताप भरि जात है।  
 मुख जाती स्याही लेखनि कैं नैकु डक लागै  
 अक लागै वागद बररि बरि जात है।

रत्नाकर जी ने ब्रजभाषा के शब्दों को रीतिकालीन कवियों की भाँति तोड़ा मरोड़ा और स्वच्छा से लघु गुरु नहीं किया है। हाँ, शब्दों की घिसाई अवश्य की है। घिसाई से तात्पर्य है शब्द की कणवदुता का परिहार कर उसे श्रुतिमधुर बनाना। जैसे अलक्ष्य को अलच्छ, गुणवाली को गुनीली, निवत्त को निवरी स्फुरित को फुरत प्रत्यक्ष का प्रतच्छ, स्थापन को थापन भाव का भाय, मन्था को मधियाँ, रोदनमयी को रूँदी सुस्वरवाला को सुधारी, नवण को नौन, दृष्टि को दीठि, मन्त्रित को सचि अहमेव को हमेव, हास को हरास, हृदयतल का हीतल आदि शब्दों का रूप गढ़ा है। इसी प्रकार ब्रजभाषा की प्रकृति का ध्यान में रखत हुए कुछ नियापद भी बना लिए हैं, जग—अनुमान बरना को अनुमान, उमग में भरकर को उमहि गिराता है का गार, गिरोरा बरना का गिहोरि, बाहर बरन का



बहिराइ, मीलनोत्मीलन को मधुराने, शीतल करना को सिराइ आदि त्रियापद बनाये है।

रत्नाकर जी ब्रजभाषा माधुय गुण से परिपूर्ण है तीन चार छंदा मे ओज गुण का भी आभास मिलता है, किंतु उद्धव शतक का मूल गुण माधुय ही है। माधुय गुण मे कोमल कांत पदावली तथा सरस शब्दा न प्रयोग होता है। श्रुतिमधुरता भी उसम रहती हू। अथबोध की दृष्टि स माधुय गुण वाले छंद क्लिष्ट नही होने। प्रसाद गुण का पुष्ट देकर रत्नाकर जी ने माधुय गुण का संचार किया है। उद्धव शतक म कवि ने पङ्कतु वणन को भी स्थान दिया है। वसंत से शिशार ऋतु तक छहा ऋतुओ की सुपमा छह कविनो मे वर्णित है। यह ऋतु वणन माधुय गुण से ओत प्रोत है। माधुय की तैसी छटा इस ऋतु वणन मे है वैसी रीतिकालीन कवि सेनापति और पद्माकर को छोडकर किसी अय कवि म नही मिलती। यदि रीति और वसति की दृष्टि से उद्धव शतक की भाषा पर विचार किया जाय तो यह वैदभी रीति के अतगत स्थान पाएगी। वैदभी रीति मे भाषा ललित और कोमल होने के साथ मसण और रिन व शब्द भाषा ठानी पाए। उद्धव शतक की भाषा इसी प्रकार की है।

सक्षेप म, उद्धव शतक की भाषा माधुय गुण समृद्धित, व्याकरणानुमादित, लोक व्यवहार की दृष्टि से प्रयोगानुकूल एउ सुव्यवस्थित है। ऐसी ललित पामल कांत पदावली वाली ब्रजभाषा आधुनिक युग मे किसी अय कवि ने नही लिखी। रीतिकाल मे घनानंद, पद्माकर और विहारी म ऐसी मधुर भाषा ललित की जा सकती है। रत्नाकर जी का प्रिय कवि विहारी था। विहारी की समास शैली पर वे मुग्ध थे। विहारी के शब्द चयन को आदश मानते थे। इसी कारण कही कही विहारी मत्तसई के दाता की झणव उनकी रचनाआ मे मिल जाता है। ब्रजभाषा के निरूप पर तो रत्नाकर जी आधुनिक काल म बेजोड है।

०००

## उद्धव-शतक में रस योजना

उद्धव-शतक एक मुक्तक काव्य है जिसका प्रत्येक छंद स्वतंत्र है अतः समग्र रूप से रस योजना का निर्धारण करना और निष्पत्त्यात्मक मत व्यवहार करना सरल नहीं है। यदि छंदों के प्रतिपाद्य को अलग-अलग करके निष्पत्त्या दिया जाय तो दो प्रकार के छंद इस काव्य में उपलब्ध होते हैं। अधिकांश छंद गापिया व कृष्ण प्रेम और विरहानुभूति से परिपूर्ण हान के कारण विप्रलभ शृंगार के अंतर्गत रस जा सकते हैं। दूसरी कोटि के छंद वे हैं जिनमें निगुण भक्ति का प्रतिपादन है। यदि भक्ति का रस माना जाय तो इन छंदों को भक्ति रस के अंतर्गत परिगणित किया जाएगा। इस प्रकार उद्धव शतक की रस योजना का विश्लेषण विवेचन दोनों रसों के आधार पर करना उचित है।

विप्रलभ शृंगार का शास्त्रीय दृष्टि से विवेचन संस्कृति के आचार्यों ने विस्तार पूर्वक किया है। मम्मटाचार्य के मतानुसार विप्रलभ शृंगार के पांच भेद हैं। अभिलाषा-हेतुक, ईर्ष्या-हेतुक, विरह हेतुक, प्रवास हेतुक और शाप हेतुक। (अभिलाषा विरहर्ष्याप्रवामशाप हेतुक इति पञ्च विधः)। रत्नाकर जी ने उद्धव शतक में विप्रलभ शृंगार का वर्णन अभिलाषा, विरह और प्रवास परक किया है। ईर्ष्या के लिए विशेष स्थान नहीं है। पाँच सात छंदों में कृष्ण प्रेम की बात अवश्य आई है, उस ईर्ष्याहेतुक विप्रलभ के अंतर्गत रखा जा सकता है। शापहेतुक विप्रलभ का उद्धव शतक में कोई सदृश नहीं है। विप्रलभ शृंगार में विरही जन की दस अवस्थाएँ स्वीकार की जाती हैं। अभिलाषा, चिन्ता स्मरण, उद्वेग, गुण वचन, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जडता तथा मरण। इन दस दशाओं में से पाँच का स्पष्ट रूप से उद्धव शतक में वर्णन है। उन्माद, व्याधि, जडता, प्रलाप और मरण दशा का वर्णन नहीं मिलता। संचारियों में अतीत्युक्त, चिन्ता, क्षया, प्रबोध और मद का वर्णन है। इस प्रकार विप्रलभ शृंगार की स्थिति पूर्ण में सम्पन्न हो जाती है।

विप्रलभ शृंगार की पूर्णता के लिए विरही व्यक्ति के मन में प्रवल प्रेमावेश के होने पर छटपटाहट होना आवश्यक है। प्रिय समागम के अभाव में विरहीजन

की मनोदशा व्याकुल-व्यथित स्थिति में होती है। उद्धव-शतक में प्रवास हेतुक विरह है। कृष्ण प्रवास में मथुरा गये हुए हैं। गोपिया गोकुल में प्रतीक्षारत हैं। चिन्ता और औत्सुक्य से वे पीड़ित हैं। उधर श्रीकृष्ण भी पिजरे में बन्द तोने के मुख से राधा का नाम सुनकर व्याकुल हैं। उन्हें गोपियों का स्मरण हो आता है, अतीत की स्मृतियों से उनका मन विभोर हो उठता है, गला भर आता है, बाणी अवरुद्ध हो जाती है मन की बात स्पष्ट कहने की शक्ति उनमें नहीं रहती और वे हिचकियाँ लेकर अपनी विरह व्यथा उद्धव के समक्ष प्रकट करत हैं

विरह विधा की क्या अकथ अथाह महा

कहत बनै न जा प्रवीन सुखवीनि सौं ।

कहै रतनाकर बुझावन लग न काह

ऊधी को कहन हतु ब्रज जुवतीनी सौं ।

गह्वरि आयी गरी भभरि अचानक त्यों

प्रेम पर्यो चपल चुबाइ पुतरीति सौं ।

नैकु कही वननि, अनक की नानि सौं

रही सही साजवट दीनी हिचकीनि सौं ।

श्रीकृष्ण ने ब्रज में निवास करत हुए गोपिया के साथ अनेक प्रवार की लीलाएँ की थीं। गोकुल की गलिया में दधि मक्खन के लिए छेपछापी की थी। नाच गान किया था। चामुरी बजा कर गोपियों का मनोविनोद किया था। व सब कृत्य प्रवास के समय उन्हें रह रहकर याद आने लगे। उनके स्मृति-मटल पर ब्रज विनोद सहसा उभर आया और स्मरण में विभोर होकर उन्होंने उद्धव से कहा

गोकुल की गन-गल, गन-गल ग्वालिन की

गो रम कै काज लाज-चस कै बहाइवो ।

कहै रतनाकर रिझाइवो नवेलिनि की

गाइवो गवाइवो और नाचिवो त्थाइवो ।

कीवो समहार मनुहार के विविध विधि

मोहिनी मृदुल मजु वागुरी बजाइवो ।

ऊधी गुण सम्पत्ति समाज ब्रज मडन के

भूलै हूँ न भूल भूलै हमका भुलाइवो ।

उद्धव के ब्रज आगमन का समाचार सुनकर गोपियाँ जान-बूझकर विभोर होकर अपने घरों में भाग पड़ी हुई और उद्धव के पास पहुँच गईं। उद्धव ने उन्हें बताया कि मैं कृष्ण का संदेश पत्र लेकर आया हूँ। यह सुनते ही गोपियों ने जा औत्सुक्य प्रकट किया वह रतनाकर जी बाणी में इस प्रवार है

उषकि उषकि पत्र-वार्ता के पत्रनि प

पगि-नधि पाती छाती छाहनि छव लग।

हमबों लिख्यो है कहा, हमबों लिख्यो है कहा

हमबों लिख्यो है कहा, कहत सब लगी ॥

गोपिया व मन म शरा है कि वृष्ण मथुरा म बस कर हम भूल गय है । शायद वृष्ण का मन बुद्धि म रम गया है । इसी कारण वृष्ण हमे भूल गय है । इस सदेह-  
पाका के वातावरण म गोपियो का मन ईर्ष्या स भर जाता है । ईर्ष्या हुतुक विप्रलभ  
व साथ अमूया सचारी भाव उनक मन म आता है । तीन चार छंदा मे कवि ने  
ईर्ष्या भाव वा वणन किया है । ईर्ष्या का विषय कुब्जा है

सुनी गुनी समझी तिहारी चतुराई जित्ती

काह की पडाइ कजिताई कुबरी की है ।

वहै रतनकर त्रिपाल हू त्रिलोक हू मैं

आन जननैकु ना त्रिदव की कही की है ।

कहहि प्रनीति प्रीति नीति हू त्रिवाचा वाधि

ऊधौ सांच मन नी हिय की प्रखजी की है ।

वे तो है हमार ही हमार ही हमारे ही और

हम उनही की उनही की उनही की है ॥

दूसर छंद मे पुन कुब्जा का लाच्छन व्यक्त किया है और कहा है और ऐसा प्रतीत  
होता है कि उद्वव तुष्ट वृष्ण न नहीं कुबरी ने भेजा है—

रसिक सिरामनि की नाम बदनाम करी

मरी जान ऊधौ क्रूर कुबरी पठाए है ।

तीसर छंद म भी कुबरी के प्रति उपालभ की चर्चा करत हुए गोपियो ने अमूया  
वा सक्त किया है—

याही साच माहि हम होती दूबरी क कहा

कुबरी हू हाती न पतोह नदराय की ।'

यदि इन छंदा को विप्रलभ श्रु गार की कसौटी पर कमा जाय तो यही प्रतीत होगा  
कि गोपिया विरहानुभूति स पीडित आ जय हू और वृष्ण (नायक) उनके प्रेम के  
आलम्बन हू । नायक और नायिका के स्तर पर इस विप्रलभ श्रु गार को भली-  
भांति समझा जा सकता है । गोपियो की वाणी उपालभ की है और उनकी वेदना  
वियोगजनित दग्ध हृदय की ह । विरह वणन मे प्राय ऊहात्मक उक्तियो का  
कविगण प्रयोग करत है । ऊहा का प्रयोग अतिशयोक्ति व्यापार हां है । किंतु  
ऊहात्मक उक्ति मे कथन-सौ दय अपेक्षित है जो अतिशयोक्ति क लिए अनिवाय  
नही है । रत्नाकर जो न गोपिया के विरह वणन म ऊहात्मक-पद्धति का भी यत्र-  
तत्र प्रयोग किया है किंतु यह रीतिकालीन कविया के समान प्रचुर मात्रा म नही  
है । ऊहा का विरल प्रयोग ही उद्वव शतक म मिलता है । उद्वव गोपियो से  
मिलकर मथुरा वापस जाने लग तब गोपिया ने अपना प्रेम पत्र उनके हाथ वृष्ण

के पास भेजन का उपग्रह क्रिया त्रिभु विरहताप व कारण स्याही सूख गई, लेखनी को डक लग गया और अक्षर बनते बनते कागज ताप से झुलस गया। यह वणन ऊहा का उदाहरण है। बिहारी में तो ऐसे बीसियों प्रयोग मिलते हैं। रत्नाकर जी ने बड़ी सूझ बूझ से इस ऊहा को पत्र-लेखन सदभ म प्रयुक्त किया है

ऊधौ के निहारै करि नैकु धीर जोरै पर

एमी अम ताप की प्रताप भरि जात है।

सूखि जात स्याही लेखनी के नकु डक लागै

अक लाग कागद वगरि बरि जात है।

उपयुक्त वर्णना से यह स्पष्ट हो जाता है कि रत्नाकर जी ने उद्धव शतक में विप्रलभ शृंगार को उमक पूरे परिवेश में चित्रित किया है। श्रीकृष्ण और गोपिया दोनों ही प्रेमातिरक में डूबे हैं और दोनों को समान रूप में वियोग त्रयया साल रही है। इस वियोग-व्यथा में विप्रलभ शृंगार को पूरा आयास देकर काव्य को शृंगाररस में निमज्जित कर दिया है।

दूसरी ओर जो विद्वान भक्ति को भाव न मानकर रस मानते हैं और उसके विभाव, अनुभाव और संचारी आदि भी स्वीकार करते हैं, वे उद्धव शतक में भक्ति रस की चर्चा करते हैं। चर्चा में अभिप्राय संकत से ही है। व्यवस्थित रूप से किसी विद्वान ने उद्धव शतक में भक्ति-रस की स्थापना नहीं की। श्रीकृष्ण गापियो के आराध्य हैं, प्रणय हैं, इष्टदेव हैं। दूसरे शब्दों में श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार हैं। गोपिया जीवात्मा है। जीवात्मा का प्रयत्न ईश्वर प्राप्ति द्वारा मुक्ति कामना है। श्रीकृष्ण को भक्ति रस आलम्बन, गोपिया को आश्रय तथा स्मरण, कीर्तन, गुणश्रवण नामस्मरण आदि को संचारी मानकर भक्ति रस का संकेत किया जाता है। इस सम्बन्ध में विचारणीय यह है कि गोपिया जिस श्रीकृष्ण को अपनी भक्ति भावना का आलम्बन बनाती है वह सगुण सारार है निगुण, निराकार नहीं। उद्धव जिस परब्रह्म की चर्चा भक्ति सदभ में करते हैं, वह रूप रखाविहीन निगुण निराकार अद्वैत ब्रह्म है। इस प्रकार भक्ति रस मानने वाले पाठकों के समक्ष भगवान के दो रूप उपस्थित होते हैं। प्रश्न है कि उद्धव शतक में यदि भक्ति रस की स्थापना करनी है तो किस प्रकार के भगवान को स्वीकार किया जाना चाहिए। जो प्रकार की भक्ति पद्धतियाँ में विरोध होने पर भक्ति रस की स्थापना के सदभ में बड़ी उलझन उत्पन्न होगी। इस विवादास्पद विषय के कारण भक्ति रस का पूरा परिष्कार संभव ही नहीं है, हाँ भाव रूप में सगुण भक्ति को उद्धव शतक में स्वीकार किया गया है भक्ति-रस के रूप में उमकी पूरा प्रतिष्ठा नहीं है। निगुण और सगुण दोनों प्रकार के इष्टदेव (ब्रह्म और विष्णु) इसमें वर्णित हैं। गोपियाँ अपने सगुण ईश्वर का वर्णन करते समय सप्रमाण मतक संयुक्तिक पद्धति से निगुण ब्रह्म का वर्णन करती हैं। एमी स्थिति में भक्ति रस की स्थापना संभव नहीं है। अतः उद्धव शतक को विप्रलभ शृंगार का काव्य ही मानना अधिक युक्तिमत्त, तब प्रमाण समत और दुद्दिगम्य प्रतीत होता है।

## उद्धव-शतक का काव्य-रूप

उद्धव शतक के काव्य रूप के सम्बन्ध में किसी प्रकार के विवाद की सम्भावना नहीं है। यह एक मुक्तक काटि का काव्य है। किन्तु मुक्तक का कौन-सा रूप इसमें कवि ने स्वीकार किया है यही विचारणीय है। मुक्तक को संस्कृत के आचार्यों ने इतर की अपेक्षा न रखने वाला काव्य रूप ठहराया है—'मुक्तक मितरानपेक्षमेव सुभाषितम्।' इसमें सुभाषित का अनुबन्ध परवर्ती कात में अनिवार्य नहीं रहा। दूसरी परिभाषा में सुभाषित की शत नहीं है—'मुक्तक वाक्यांतर निरपेक्षोय श्लोक' जर्थात् वाक्यांतर निरपेक्ष श्लोक ही मुक्तक है। मुक्तक कुलक कोश सघात इति तादश' भी मुक्तक की परिभाषा है। जानद्वयधन न ध्वयालोक में मुक्तक के सम्बन्ध में विचार व्यवहृत करते हुए कहा है कि 'मुक्तको में रस निबन्धन में जाग्रहशील कवि के लिए रसाश्रित जोचित्य नियामक तत्त्व है। प्रबन्ध काव्य के समान मुक्तको में भी रस का अभिनिवेश करने वाले कवि पाय जाते हैं। कविवर रत्नाकर इसी षण्ठे के कवि हैं। उन्होंने रसाभिनिवेश का अपने उद्धव शतक में जासोपात ध्यान रखा है।

मुक्तक की उपयुक्त परिभाषाओं को ध्यान में रखते हुए यदि हम मुक्तक के तत्त्वों का मधान करें तो हम चार पक्ष लक्षित होंगे। मुक्तक अयनिरपेक्ष होता है, अनिबद्ध अर्थात् कथा प्रबन्ध में रहित होता है रस चवण में रस निबन्धन के कारण चमत्कारपूर्ण होता है। तथा छन्द विधान की दृष्टि से समान अर्थात् एक ही छन्द में निबद्ध होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मुक्तक को पुष्पो का सुव्यवस्थित गुलदस्ता कहा है। प्रबन्ध का अय विस्तृत बनस्थली है। मुक्तक में एक ही मार्गिक, रमणीय खड्गदृश्य या कथ्य का वणन होता है। विषय की दृष्टि में कवि सुन्दर एवं मनोहारी कथा प्रबन्ध के किसी अंश को भी चुन सकता है किन्तु वह छन्द काव्य के सदृश कथा सम्बद्ध नहीं होता। मुक्तक का छन्द कुछ क्षणों के लिए पाठक के मन में आनन्द और चमत्कार उत्पन्न कर मन को रस में निमज्जित करने वाला होता है।

राजशेखर ने मुक्तक के पात्र भेद स्वीकार किये हैं। शुद्ध, चित्र, वधोत्थ, सविधानकम, आट्यानकवान। उद्धव शतक के मुक्तक रूप पर विचार करते समय चित्र और जाग्यानकवान का प्रभाव देखा जा सकता है। पाश्चात्य साहित्य में मुक्तक के समशील लिरिक पोइट्री को माना जाता है। लिरिक पोइट्री यद्यपि मुक्तक काव्य को सम्पूर्णतः नहीं समेटती फिर भी गयता, स्वच्छन्दता, निरपेक्षता आदि तत्वों में एक सीमा तक यह समशील कही जा सकती है। लिरिक-कविता, विचार-कविता (रिफ्लेक्टिव) और भावात्मक कविता (इमोशनल) होती है। यदि मुक्तक के मोटे तौर पर भेद किये जाएं तो विशुद्ध मुक्तक, सघात मुक्तक और प्रबध मुक्तक तीन प्रमुख भेद होंगे। उद्धव शतक को प्रबध मुक्तक के अंतर्गत रखा जा सकता है। लिरिक पोइट्री में यह विचारात्मक कविता के अधिक समीप है।

उद्धव शतक के काव्य रूप पर विचार करते हुए डा० रमाशंकर शुक्ल रसालन लिखा है कि 'उद्धव शतक का चित्रोपम काव्य है जिसमें प्रबधात्मक मुक्तक का प्राधान्य है और जिसमें अभिधा लक्षणा तथा व्यजनातीना का अच्छा उत्पन्न मिलता है। सरसता, रसात्मकता, अथ गौरव और ललित मधुल पदावली की मधुरता तो कूट कूट कर भरी हुई है।' इसमें प्रबधात्मकता तथा चित्रोपमता दो शब्द ध्यातव्य हैं। चित्रोपम कोई काव्यरूप नहीं है। मुक्तक में ही चित्रोपम सौंदर्य सन्निहित रहता है। इस काव्य को प्रबध मुक्तक की कोटि में रखने के लिए तीन तक दिया जा सकता है। इन्हीं तीन तक प्रमाणात् हम उद्धव शतक को प्रबध मुक्तक ठहरा सकते हैं। पहला तत्व है प्रत्यक्ष छंद में स्वतंत्र होने पर भी सूक्ष्म कथासूत्र का समावेश। भागवत पुराण की कथा का अति सूक्ष्म-सा तत्त्व प्रत्यक्ष छंद में प्राप्त हुआ कृष्ण गोपी विरह के प्रसंग का जाड़कर कथा का रूप दे देता है। दूसरा तत्व है सम्वाद। सम्वाद का प्रत्यक्ष रूप उत्तर प्रत्युत्तर का न होना पर भी छंद में ही गोपी और उद्धव के वातालाप की झांकी पाठक को मिल जाती है। गोपियाँ अपनी बात जिम शैली से कहती हैं उसमें सम्वाद या कथापकथन का पुट बना रहता है जो प्रबध काव्य का एक तत्व है। तीसरा तत्व है विचार जो समुच्च निगुण विवेचन में उभरता है। विचारतत्त्व मुक्तक में भी रहता है किन्तु प्रत्यक्ष छंद में विचार गुम्फित होकर अगले छंद को योजना में भी बना रहे तो प्रबधात्मकता का समावेश हो जाता है। उद्धव शतक में मुक्तक परम्परा का पूर्ण निर्वाह हान के साथ इन तीनों तत्वों का समावेश उस प्रबध मुक्तक की कोटि में स्थान दिला देता है।

कुछ समीक्षकों ने उद्धव शतक को उपालभ काव्य लिखा है। वास्तव में उपासभ काव्य रूप नहीं है। यह तो वधन शैली है। उद्धव शतक में जाद्योपास उपालभ नहीं है। यत्र-तत्र कुछ प्रसंगों में गोपियाँ कृष्ण के प्रति उपालभ की भाषा

का प्रयोग करती है। उपालभ मे वृज्जा की चचा भी कर देती है। यह सब उपा लभ की कथन शैली मात्र है। इसे काव्य रूप ठहराना असंगत और अनुचित है। किसी भी शास्त्र में उपालभ को काव्य रूप या काव्य विधा नहीं माना गया है। अत उद्धव शतक को उपालभ काव्य कहना शास्त्र सम्मत नहीं है। यह भी ध्यातव्य है कि उद्धव शतक में भ्रमर मधुकर, मधुप आदि शब्दों का प्रयोग गोपियां नहीं करती, वे सीधा उपालभ देती हैं। मधुप शब्द का प्रयोग केवल एक बार हुआ है।

उद्धव शतक के ११७ छंदों में कवि ने मुख्यतः वृष्ण गोपी विरह को उद्धव के द्वारा व्यंजित किया है। उद्धव दूत है, वृष्ण के सदेशवाहक हैं किंतु उनका अपना भी दर्शन है जो ज्ञान और योग से प्रेरित है। उसका आधार निगुण त्रह्य की उपासना है। अपनी निगुणोपासना को सतक, सप्रमाण प्रस्तुत करने में उद्धव ने कोई कमी नहीं की है। यह स्थापना कथ्य की दृष्टि से प्रबध का ताना बाना बुनती है गोपियां सगुणोपासक हैं। उनके पास भी अपना कथ्य है जो तब प्रमाण की भिन्ती पर सुदृढ़ है, फलतः दोनों के बीच सवाद या वाद विवाद की सृष्टि हो जाती है। इसलिए उद्धव शतक शुद्ध मुक्तक नहीं रह पाता। उसका आधार उप जीय भागवत पुराण का एक सदभ हो जाता है जो न तो पूरा प्रबध काव्य है और न खडकाय। अतः मुक्तक काव्य में ही प्रबध सदभ का समाहार करके कविवर रत्नाकर ने उद्धव शतक की रचना की है।

छंद विधान छंद की समानता भी उद्धव शतक में बनी रही है। घनाक्षरी (कवित्त छंद) में ही उद्धव-शतक लिखा गया है। यह छंद शृंगार और वीर दो रसों में प्रायः प्रयुक्त होता रहा है। यह वर्णिक वृत्त है इसमें १६ और १५ पर विराम देते हुए ३१ वर्ण लिखे जाते हैं, कवित्त छंद में गति पर कवि को विशेष ध्यान देना होता है। गति और लय दोनों को दृष्टि में रखकर जब कवित्त की रचना की जाती है तो कवित्त सुपाठ्य बनता है। रीतिकालीन कवियों ने कवित्त छंद को खूब परिमार्जित किया था। दद, मतिराम, घनानन्द, ठाकुर और पद्माकर कवित्त लिखने में सफल हुए हैं। रीतिकाल के बाद सर्वश्रेष्ठ कवित्त छंद की रचना रत्नाकर जी ने ही की है। उद्धव शतक इन मुंदर कवित्तों का अप्रतिम उदाहरण है। रत्नाकर जी ने गति, यति लय और वर्ण चयन की साधना की थी। उनके छंद सरल शैली में, प्राजल भाषा में शब्द चयन की चारुता में और पदबंध के सौष्ठव में अनूठे हैं। रत्नाकर जी के बाद किसी अन्य कवि ने घनाक्षरी कवित्त का ऐसा मनाहारी प्रयोग नहीं किया। रत्नाकर जी ने इस छंद का अमरत्व प्रदान किया है।



## उद्धव-शतक में अलकार-योजना

काव्य का अलङ्कृत करने वाले उपादान के रूप में जिन तत्वा की गणना की जाती है उनमें अलङ्कारों का विशेष स्थान है। अलङ्कार का संस्कृत काव्य-शास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान मिलने से एक सम्प्रदाय ही 'अलङ्कार सम्प्रदाय' बन गया जिसमें भामह, दंडी, वामन और रट्ट नामक चार आचार्यों का प्रमुख स्थान है। शब्द और अर्थ के वचिन्व को अलङ्कार मानने वाले आचार्य भामह ने इस सम्प्रदाय को सर्वोपरि माना है। दंडी के मत में काव्य को सौंदर्य प्रदान करने वाले घट्ट ही अलङ्कार हैं। वामन के मत में अलङ्कार द्वारा ही काव्य ग्राह्य होता है और सौंदर्य ही अलङ्कार है। रट्ट भी वचन के प्रकार विशेष को अलङ्कार मानते हैं। अलङ्कार के इस महत्व का हिन्दी के कुछ रीतिकालीन कवियों ने भी यथावत स्वीकार किया है। आधुनिक युग के समीक्षक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अलङ्कार की परिभाषा इस प्रकार दी है 'भावा का उत्कृष्ट दिखाने और वस्तुओं के रूप गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी कभी सहायक होने वाली युक्ति अलङ्कार है। वास्तव में अलङ्कार बाह्य एवं अभ्यन्तर शाभा विधायक काव्य तत्व हैं जिसे दो मुख्य भेद हैं, शब्दालङ्कार तथा अर्थालङ्कार।

उद्धव शतक में रत्नाकर जी ने अलङ्कार का प्रयोग काव्य भाषा का उत्कृष्ट सिद्ध करने और भावा की तीव्रता के लिए ही किया है। रीतिकालीन कवियों की भाँति अलङ्कारों का ऊपर से लादा नहीं गया है। जयन्त की भाँति रत्नाकर जी अलङ्कार का काव्य का नित्यघट्ट नहीं मानते। आचार्य मम्मट की भाँति रस भाव आदि के उत्कृष्ट के लिए अलङ्कारों का अपने काव्य में प्रयोग किया है। शब्दालङ्कार तथा अर्थालङ्कार दोनों प्रकार के सुन्दर अलङ्कार उद्धव शतक में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। शब्दालङ्कारों में अनुप्रास तो रत्नाकर जी की रचनाओं में अनायास नसर्गिक भाषा के रूप में समाया रहता है। बिना किसी आयास के अनुप्रास का प्रयोग इनका स्वभाव है। अनुप्रास के लिए कोश का मधान करना और शब्दों का चयन करना रत्नाकर जी के स्वभाव में नहीं है। सिद्ध कवि के रूप

मे अनुप्रास पूण शब्द उनकी रचना मे स्वत दौड़े चले जात ह। बाणी उनके वश मे होकर उनके पीछे चलती है, भाषा उनकी वशवर्तिनी होकर वाक्य मे स्थान पाती है। अनुप्रास, यमक, श्लप, वीप्ता, पुनरुक्तिपकाश आदि अलवार उद्धव शतक म प्रचुर माना म मिलत है—

उद्धव शतक का मगलाचरण का पद अलवार प्रयोग की दृष्टि स बहुत महत्वपूर्ण है। इस पद म श-दातकार और अर्थालवार दोनों का कवि ने प्रयोग किया है। कवित्त के प्रथम चरण म अनुप्रास की छटा है

जासों जाति विषय विषाद की विधाई नैगारी करी

चोप चिकनाई चित्त धार गहि वी करी

+

+

जयति जसो मति क लाडिले गुपाल, जन

रावरी कृपा सौ सा सनेह तेंहिबो करी

इसी पद म सनेह शब्द मे श्लेष भी स्पष्टत लक्षित किया जा सकता है। यकी अनुप्रास और अल्पानुप्रास तो पूर पद म अनुस्यूत है। दूसरे पद म भी इसी प्रकार अनुप्रास और यमक की छटा है। स्मरण नामक अर्थालकार भी है।

हात जमुना मे जल जात एक दख्या जात

जाकी अध अरघ अधिक मुरक्षायो ह।

कहै रत्नाकर उमाहि गहि स्याम ताहि

वास वासना सौ नैकु नासिक लगायो है।

यदि उद्धव शतक के समस्त पदो पर अनुप्रास, श्लप, यमक, वीप्ता आदि शब्दाल कारा की दृष्टि म विचार किया जाय तो इन अलकारा का कोई न-कोई रूप प्राय प्रत्येक पद म लक्षित किया जा सकता है। निम्नलिखित कवित्त म अनुप्रास की छटा द्रष्टव्य है।

कोऊ चल कापि राग कोऊ उर चापि चले

कोऊ चले कछुक अलापि हरवल मे।

कहै रतनाकर सुदेश तजि कोऊ चल

कोऊ चले कहत सदस अविरल स।

वास चल बाहू के सुकाहू के उसास चल

बाहू के हिये पै चंद हास चल हल से।

ऊग्रव के चलत चला चल चली यी चल

अचल चल औ अचल हू भय चल स॥

रत्नाकर जी का प्रिय अर्थालकार साग रूपक है। यो तो रूपक के सभी भेद इस वाक्य म मिलते ह किन्तु साग रूपका की छटा कवि की कल्पना शक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करती है। कृष्ण अपनी व्यथा का वणन करते हुए उद्धव स कहत है कि

मेर मा म बालान गो मरु रगति दिग रात यो जसी यमपती रहती है ।  
 बाँट की वसत का साग म पर ग ररावर जो त इस प्रकार प्रस्तुत किया है ।  
 बाँटा निवाला के लिए निमटी काम म आती है, यहाँ चाह का निमटी बाया  
 है । जाक का मूध लगाने बाँटा गिताला जाता है यहाँ धप हा अक-मूध है ।

चलन त चार यो भाति काटिनि विचारयो तऊ  
 दाधि-गनि हारयो प त टारयो टमरत है ।  
 परम गहोली यगुव-दयवी की मिली  
 घाट घिमटो टू सो त यथा यतकत है ।  
 तड़ा त यवा इ हाय विषये उपाम साथ  
 धीर जाक छोर हू त धारं घसगत है ।  
 उधो त्रानाम य विलागनि का ध्यान धस्यो  
 निति तिन पांटे की परेजो कसका है ।

इस उक्ति म श्रुत भी है, यमप भी है व्यतिरक्त भी है अनुप्रास और प मत्री  
 तो रत्नाकर जी की वाणी की शाभा है । इस प्रकार यह श्रेष्ठ सांग रूपक है ।  
 इस रूपक म ब्रजसंस्कृति की क्षणा बाँटा निवाजन की क्रिया म है । ग्वाल-वाल  
 जगल म धूमत हुए बाँटा लगन पर इसी क्रिया का उपयोग करत है ।

इसी प्रकार साग रूपक का दूसरा सुन्दर उदाहरण है जिसम श्रीकृष्ण गो  
 राधा के मुखचन्द्र का ध्यान आत ही उनके हृदय म प्रेम का समुद्र उमडन लगता है  
 क्षणावात उठ खड़ा होता है और विचार रूपी बवट परिधम करक हार जाता है ।

बेवट विचार का विचारो पचिहारि जात  
 हान गुनपाल ततवाल नभगत है ।  
 करत गभीर धीर लगर न काम बछू  
 मा को जहाज डगि डूवन लगत है ।

एक ही पद म अनेक जनशारा की छटा ता रत्नाकर जी की शली या प्रमाधन  
 है । यदि इस कवित्त सकलित किय जाएँ तो तीन दजन स अधिक हाय । एक पद  
 नीचे दे रहे हू जिसम शतप अलकार के साथ रूपक, दहरी दीपक, असगति और  
 अनुप्रास एक साथ विद्यमान है

सीलसनी सुरुचि सु वात चल पूरव की  
 और औप उभगी दगनि मिदुराने न ।  
 + + +

धीरकी प्रवाह का ह नमनि क तीर बह्यो  
 धार बह्यो उधो उर अचल रसाने त । (१२)

साग रूपक की एक अन्य उदाहरण इत नेत माहि माद खाई सुद्ध स्वारथ की,  
 प्रम तन गोपि राट्यो ताप गमनी नही' पद म है । यह हाथी का फसाने की क्रिया

के साथ कृष्ण की ब्रजवासियों द्वारा अनुराग के जाल में फसाने का वर्णन है। समस्त पद में हाथी पकड़ने की पत्निया भी है और वृष्ण प्रेम का भी वर्णन है। इसी पद में अनुप्रास की छटा भी देखी जा सकती है।

वारनि कितेक तुम्ह वारन कितेव बरै

वारन उबारन ह्वै वाम बनौ नही।

साग रूपक, यमक, परिवाराकुर और अनुप्रास का इस पद में अच्छा प्रयोग कवि ने किया है।

उद्धव शतक का चित्रोपम काव्य बहने वाले समीक्षक इस काव्य में अनेक ऐसे स्थल देखते हैं जिनमें वस्तु या भाव को कवि ने शब्द के माध्यम से साक्षात् मृत रूप देकर प्रस्तुत किया है। वृष्ण की विरह-व्यथा को कवि ने यह कहकर मृत किया है—'विरह विथा की कथा अकथ अथाहमही—और प्रेम पर यौ चपल चुचाइ पुतरीन सौ' जादि द्वारा जो चित्र खड़ा किया है वह अदभुत है। यह चित्रोपम तो शब्द साधना द्वारा ही संभव हो सकती है।

पुनरुक्ति, वीप्सा, यमक और श्लेष के ता बीसिया सुन्दर उदाहरण उद्धव शतक में भरे पड़े हैं। विरोधाभास काव्यलिंग स्मरण, विपम, दृष्टान्त, लोकवित्त, परिवाराकुर, उत्प्रेक्षा, उपमा जादि अनेक अलंकारों का भंडार है उद्धव शतक। यदि उद्धव शतक के प्रत्येक कवित्त में अलंकार का अनुसंधान किया जाय तो कोड़ी भी कवित्त ऐसा नहीं मिलगा जिममें शब्दालंकार अथवा अर्थालंकार का सौंदर्य लक्षित न किया जा सके।

शब्दालंकार की योजना में वर्ण मन्त्री और शब्द मन्त्री पर भी रत्नाकर जी ने पूरा ध्यान रखा है। एक-एक वर्ण और शब्द का ताल कर उसके साथ मेल रखने वाला उभी वर्णन का वर्णन या शब्द रखना रत्नाकर जी की शब्द-योजना का चमत्कार है। उदाहरणार्थ—

पाचा तत्व माहि एक तत्व ही मी सत्ता सत्य

या ही तत्व जान की महत्व स्तुति गायी है।

इसी प्रकार दूसरा उदाहरण है—

कहै रत्नाकर न आए मुख बन नन

नीर भरि ल्याए भाए मकुवि सिहाने से।

सूखे से खमे से सकवके सं यक

भूले से भ्रमे से भभरे से भक्ववाने स।

संक्षेप में उद्धव शतक का अनुशीलन इस तथ्य को सप्रमाण सिद्ध करता है कि रत्नाकर जी की अप्रस्तुत योजना बाहर से लादी हुई कृत्रिम अलंकार योजना नहीं है। उनकी अप्रस्तुत योजना भाव और भाषा के साथ तालमेल रखती हुई स्वतः स्फूर्त योजना है जो उनके काव्य की चमत्कारपूर्ण और गुंजिपूर्ण बनाने में

उद्धव-शतक के अलंकार योजना

सफल है। रीतिकाल के तीन चार कवि ही ऐसे हैं जो रत्नाकर जी की अलकायोजना के माय एक श्रेणी में रमे जा सकते हैं। यदि पद मंत्री के लिए, लोकोक्ति और मुहावरे के लिए इनकी कविता पर ध्यान दिया जाय तो आश्चर्य होता है कि रत्नाकर जी ने कितने सहज रूप में लोकोक्तियों को अपने काव्य में स्थान दे दिया है।

कठिन कसाले परे लाले परे प्रात के ।  
 + + +  
 छार ह्वै गइ धौं बिरहानल की झार मे ।  
 + + +  
 ज्ञान गयी लहित गुमान गिरि गाठी त ।  
 + + +  
 नानी बहू राधे आधे कानि मुनि पावै ना ।  
 + + +  
 जहै तीन-तेरह तिहारी तीन-पांच ह्वै ।  
 + + +  
 आपु कहैं उनवे गुह है किधौं चला है ।  
 + + +  
 पारी बाह तरनी हमारी मझधार लै ।  
 + + +  
 लौटि-नौटि बातकी बवडर बनावत बयो ।  
 + + +  
 ऊयो बहिव की बग बात रहि जायगी ।  
 + + +  
 बात की मिठाई मे लुनाई त्याइ त्याए ह्वै ।  
 + + +  
 ऊघी ह्याय हमकी बयार भखिबो कहौ ।

यदि मुहावरे और लोकोक्तियों का मकलन किया जाय तो लगभग चालीस तक की मर्यादा में उपलब्ध हैं।

अप्रस्तुत यात्रा के मद्दम में रत्नाकर जी की बहुमता की चर्चा करता भी हम आवश्यक समझते हैं। श्लेष, यमक विभावना, रूपरसतिशयोक्ति, असंगति आदि अत्रकारी का प्रयोग करत समय रत्नाकर जी ने अपने विविध विषयों के अर्जित ज्ञान का भी उपयोग किया है। रत्नाकर जी ने दशनशास्त्र, आयुर्वेद शास्त्र गणित-ज्यातिषशास्त्र, योगशास्त्र, तथा विनायन का अपनी कविता में स्थान देकर अपनी बहुमता का अच्छा परिचय दिया है।

आयुर्वेद में विषम ज्वर की चिकित्सा के लिए मुदशन चूण का प्रयोग लाभप्रद माना जाता है। उद्धव शतक के कवित्त सख्या ३४ में इस ज्वर का वर्णन गोपिया के विरह प्रसंग में कवि ने किया है और श्लेष द्वारा इसका वर्णन है। गोपिया कहती है कि हम तो वियोग रूपी विषम ज्वर से पीड़ित हैं, हम मुदशन (श्रीकृष्ण दशन) चाहिए। मालूम नहीं यह किस रोग की दवाई हमारे लिए भेजी है। वैद्यक में पारे का भस्म तैयार करने का विधान है। रत्नाकर जी ने इस प्रक्रिया का भी कवित्त सख्या १०१ में वर्णन किया है। प्रेम रसायन बनाने की विधि वैद्यक शास्त्रानुसार ही है। यह पूरा मदभ वैद्यक की प्रक्रिया में जुड़ा। कवित्त सख्या १०४ में इसका पूरा वर्णन है। वेदान्त दशन के तो कई उदाहरण उद्धव शतक में हैं। उद्धव स्वयं वेदान्ती निगुण मार्गी भक्त थे अतः उसके सिद्धांत प्रतिपादन में उन्होंने इस शास्त्र का पूरा समर्थन किया है। इसी प्रकार विज्ञान के भी सिद्धांतों का यत्न-तन्त्र वर्णन है। दपण में देखते समय जब स्थान की दूरी होती जाती है तब ऐसा प्रतीत होता है कि मूर्ति मुकुर में घस गई है। यह विज्ञान वार्ता उद्धव शतक में उपलब्ध है।

ज्यो-ज्यो बसे जात हूरि डूरि प्रिय प्रान मूरि ।

त्यो त्यो धस जात मन मुकुर हमारे म ॥

संक्षेप में, रत्नाकर जी का जिन विषयों की अच्छी जानकारी थी उनका उन्होंने अपनी रचनाओं में संकेत अवश्य दिया है। द्विवेदी युगीन काव्यधारा को समीक्षकाने इतिवत्तात्मक ठहराया है, अर्थात् उस समय की कविता धारा सपाट ययानी और यथातथ्य वर्णन से ऊपर नहीं उठ सकी थी किन्तु रत्नाकर जी उसी युग में इन दोनों स्थितियों से ऊपर थे। रत्नाकर जी के काव्य को इतिवत्तात्मक काय नहीं कहा जा सकता। वह काव्य की दृष्टि में भक्तिवालीन तथा शैली शिल्प की दृष्टि में रीतिवालीन काव्य के अधिक समीप है। द्विवेदी युग की नैतिकता और आदर्शवादिता का उसमें कोई आग्रह नहीं है। उद्धव शतक इसीलिए प्रौढ शिल्प का पचिय देन वाली श्रेष्ठ काव्यकृति है।

०००

## आधुनिक-युग में उद्धव-शतक की प्रासंगिकता

आधुनिक युग में प्रत्येक परम्परावादी रचना के विषय में यह प्रश्न प्रायः उठाया जाता है कि युगवाध की दृष्टि में उद्धव-शतक जैसी पौर्णविक कथावस्तु मूलक रचना की क्या उपयोगिता है। क्या उद्धव शतक का शिल्प-सौष्ठव ही इस कृति को जीवित रखने और ग्रहण करने के लिए पर्याप्त है अथवा इस रचना में ऐसे भी तत्व हैं जो इस वैज्ञानिक युग में इस काव्य को मानव-संवेदना के स्तर पर ग्राह्य बनाते हैं? यह प्रश्न भक्तिमालीन सूरदास, मीरा, नन्ददास, रसखान तथा रीति काल के देव बिहारी, मतिराम, धनानन्द, पद्माकर आदि कवियों की रचनाओं के विषय में भी पूछा जा सकता है। वस्तुतः कालजयी कृति के सदर्भ में जब यह प्रश्न उठता है तो वह कवि की समग्र रचनाधर्मिता को स्वीकार कर ही उठता है। यदि यह प्रश्न सूरदास की रचनाओं को लेकर पूछा जाय तो लोकरजक पक्ष का आग्रह रखने वाले समीक्षक यही उत्तर देंगे कि भक्ति की सीमा में रहते हुए कवि ने जो भाव प्रकट किये हैं वे किसी एक कालावधि तक ही सीमित नहीं हैं। सूर की भक्ति शाश्वत धर्म से सम्पन्न है। अर्थात् सूर ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण की भक्ति के लिए जो पद लिखे हैं वे आज में पाँच सौ वर्ष पहले यदि भक्ति को भगवान के सामोप्य का लाभ पहुँचाने में समर्थ थे तो वे पद आज भी भक्त को उसी मनाभूमि में ले जाने में समर्थ हैं। सूर की प्रासंगिकता केवल भक्ति भावना का वातावरण बनाने में नहीं है वरन् वह चंचल मनोवृत्तियों के परिष्कार में भी योग देने वाला साधन है अतः वह आज भी प्रासंगिक है। मीरा और रसखान की कविता के विषय में भी यही तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है। उद्धव शतक की कथावस्तु के विषय में भी यह तर्क दिया जा सकता है।

उद्धव शतक की कथावस्तु का उत्तरग तत्व भक्ति ही है। भक्ति विषय सगुण निगुण विवाद की भूमि पर यह कृति खड़ी है। यदि निगुण भक्ति का प्रत्याप्यान अभीष्ट माना जाय तो इस कृति की साधनता सगुण भक्ति व प्रतिपादन में स्पष्टतः स्वाभाव्य होगी। भक्ति-सीमाता आज के युग में सर्वथा समाप्त हो गई है

ऐसा नहीं कहा जा सकता। सगुण भक्ति को स्वीकार करने वाले भक्त गण के लिए उद्धव शतक की कथावस्तु आज भी बहुत प्रासंगिक मानी जायगी। गोपियों के तक वितक, खडन मडन आदि क्वल मनोविनोद के विषय न होकर एक वस्तु सत्य के समथक ह। ईश्वर भक्ति में आस्था न रखने वाले व्यक्ति का यह सब व्यथ का क्षमेला प्रतीत होगा और वह इस वृत्ति का आधुनिक सदभ में अप्रासंगिक ठहरा देगा किन्तु इस काव्य वृत्ति का एक दूसरा पहलू भी है जो मानव मात्र के साथ जुड़ा हुआ है।

प्रेम एक रागात्मिका वृत्ति है। प्रेम में मनुष्य को अपनी चित्त वृत्ति के लिए रजक एवं बाह्याद भाव वस्तु प्राप्त होती है। उद्धव शतक में इसी रागात्मिका प्रेम भावना का वर्णन है। गोपिया श्रीकृष्ण से प्रेम करती है, श्रीकृष्ण भी उनके प्रेम से जाकृष्ट होकर उनका स्मरण करते हैं। मोना और पेम की तीव्रता है। इस प्रेम की तीव्रता की रत्नाकर जी ने उद्धव-शतक में पूरे विस्तार से वर्णित किया है। प्रेम के दोनो पक्ष—सयोग और वियोग—इस वृत्ति में उभरते हैं। सयोगावस्था का स्मरण है और वियोगावस्था की तीव्रानुभूति का विस्तृत वर्णन। आज के सदभ में मानव को प्रेमानुभूति से रहित नहीं माना जा सकता। प्रेम के आनन्दन उद्दीपन और संचारी उद्धव-शतक में पूरे आयाम में चित्रित किए गए हैं। जो इसकी प्रासंगिकता को स्वीकार करना होगा। प्रेम, शृंगार और राग आज भी प्रासंगिक है।

भक्ति और प्रेम शृंगार के अतिरिक्त उद्धव-शतक की भाषा और अभिव्यजना को भी प्रासंगिकता के निरूपण पर पर्यटना आवश्यक है। कहा जाता है कि उद्धव-शतक ब्रजभाषा की रचना है। यह भाषा आधुनिक युग की भाषा नहीं है। अतः इसे भाषा के स्तर पर प्रासंगिक नहीं कहा जा सकता। किन्तु भाषा और अभिव्यजना का प्रश्न वृत्ति की प्रासंगिकता में कोई सरोकार नहीं रखता। यदि भाषा के स्तर पर ही प्रासंगिकता का निरणय अभीष्ट हो तो सस्कृत के वाल्मीकि व्यास, वालिदास, भवभूति, बाणभट्ट आदि सभी बालजयी महाकवि अप्रासंगिक हो जाएंगे। किन्तु किसी भी समीक्षक ने इन कवियों को अप्रासंगिक नहीं कहा है। भक्ति और रीतिवादी के कवियों की भाषा भी ब्रज और अवधी है किन्तु वे भाषा के कारण अप्रासंगिक नहीं हैं। प्राकृत और अपभ्रंश के कवि भी भाषा के कारण अप्रासंगिक नहीं बने जा सकते। प्रासंगिकता की परीक्षा भाव और विचार के निरूपण पर ही होती है।

भाषा तो विचारों का वाहन मात्र है। वाहन का महत्व अवश्य है किन्तु वाहन भाव और विचार से ऊपर नहीं होता। अण्ड कवि के पास यदि भाव और विचार सम्पदा है तो वह महदय की चेतना में लहर उत्पन्न करने में समर्थ होता है। रत्नारर जी ने भाषा का एक अभिजात रूप प्रस्तुत किया तथा भाषा के



उदात्तीकरण के लिए एक पौराणिक कथाश्रुति का प्रयोग किया। वह कथाश्रुति एक दार्शनिक मतवाद (सगुण भक्ति) से जुड़ा हान के साथ भक्ति मीमांसा का भी एक पक्ष उजागर करने वाला है। अतः उसे आधुनिक युग में भी प्रासंगिक माना जाना चाहिए।

मध्ययुगीन भक्ति-काव्य का भी इसी स्तर पर मूल्यांकन किया जाता है और उस युग विशेष की देन न मानकर मानवाद्य सचेदना का शाश्वत रूप माना जाता है। मनुष्य की चिन्तवृत्ति चंचल होती है। स्थिरता का अभाव उस एक ध्यान पर टिकने नहीं देता। गोपिया इसका अपवाद है उनकी चिन्तवृत्ति पूर्णतया श्रीकृष्ण में डूबी हुई है। स्थिर चिन्तन से वे केवल कृष्ण का ही ध्यान करती हैं। उन्हीं को अपना आराध्य मानती हैं। इस प्रकार यह मुक्तक काव्य भक्ति और प्रेम, दो शाश्वत तत्त्वों का समन्वय करने वाला कालजयी काव्य है। इसकी प्रासंगिकता इन्हीं तत्त्वों के साथ जुड़ी हुई है। जब तक मनुष्य भक्ति और प्रेम के साथ अपना रागात्मक सम्बन्ध रखेगा तब तक उद्धव-शतक भी अपनी प्रासंगिकता का बनाए रखेगा। विज्ञान ने भौतिकता को प्रत्यक्ष दिया है, भावुकता को अस्वीकार किया है किन्तु मनुष्य की मूल वृत्तियों को अभी वह नष्ट नहीं कर सका है। जब तक मनुष्य अपनी मूल वृत्तियाँ न सम्पन्न रहेगा तब तक उद्धव-शतक जैसी रचनाएँ अपना प्रभाव समाज पर डालती रहेंगी, और वे अप्रामाणिक नहीं होंगी।

०००

उद्धव-शतक



॥ ओ ॥

श्री गणेशाय नमः

, मंगलाचरण

जासौ जाति विषय विषय की विवाई बेगि  
चोप-चिकनाई चित्त चारु गहिबौ करै ।  
कहै रतनाकर कवित्त-बर-व्यजन में  
जासौ स्वाद सौगुनौ रुचिर गहिबौ करै ॥  
जासौ जोति जागति अनूप मन-मदिर में  
जडता - विषम - तम-तोम - दहिबौ करै ।  
जयति जसोमति के नाडिले गुपाल, जन  
रावरी कृपा सो सो सनेह लहिबौ करै ॥

# श्री उद्धव को मथुरा से व्रज भेजते समय के कवित्त

( १ )

नहात जमुना में जलजात एक देख्यो जात  
जाकी अव-ऊरध अधिक मुखझायो है ।  
कहै रतनाकर उमहि गहि स्याम ताहि  
वास-वासना सो नैकु नासिका लगायो है ॥  
त्यो ही कछु घूमि झूमि वेसुध भए वै हाय  
पाय परे उखरि अभाय मुख छायो है ।  
पाए घरी द्वैक मैं जगाइ ल्याइ ऊधौ तीर  
राधा-नाम कीर जब औचक सुनायो है ॥

( २ )

आए भुज-बध दए ऊधव-सखा कै कध  
डग-भग पाय पग धरत धराए है ।  
कहै रतनाकर न बूझ कछु बोलत औ  
खोलत न नैन हू अचैन चित छाए हैं ॥  
पाइ वहे कज मैं सुगव राधिका को मजु  
ध्याए कदली बन मतग लौ मताए है ।  
काह गए जमुना नहान पै नए सिरसौ  
नीक तहा नेह की नदी मैं न्हाइ आए हैं ॥

( ३ )

देखि द्वरि ही तं दोरि पौरि लगि भेटि ल्याइ  
आसन दै सासन समटि सकुचानि तं ।  
कहै रतनाकर यो गुनन गुविंद लागे  
जोली कछु भूले से भ्रमे से अकुलानि तं ॥  
बहा तहैं ऊप्रौ सौ कहैं हूँ तो बहा लौ कहैं  
कैसे कहैं कहैं पुनि कोन सी उठानि तं ।  
तोलौ अधिकाई तं उमगि कठ आइ भिचि  
नीर ह्वै बहन लागी बात अगियानि तं ॥

( ४ )

विरह-विधा की कथा अकथ अथाह महा  
कहत वनै न जो प्रवीन सुकवीनि सा ।  
कहै रतनावर पुझावन लगे ज्या कान्ह  
ऊधौं का कहन हेत ब्रज-जुवतीनी सा ॥  
गहवरि आयी गरी भभरि अचानक त्यों  
प्रेम पर्यो चपल चुचाइ पुतरीनि सौ ।  
नबु कही वैननि, अनेक कही नैननि सौ,  
रही-सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सौ ॥

( ५ )

नद औ जसोमति के प्रेम-पगे पालन की  
लाड-भरे लालन की लालच लगावती ।  
कहै रतनाकर सुधाकर-प्रभा सौ मही  
मजु मृगनैनिनि के गुन-गन गावती ॥  
जमुना बछारनि की रग-रस-रारनि की  
विपिन-विहारनि की होस हुमसावती ।  
सुधि ब्रज-वासिनि दिवैया-मुख रामिनि की  
ऊरी नित हमकी पुलावन को आवती ॥

( ६ )

चलत न चार्यो भाति बोटिनि त्रिचार्यो तऊ  
दावि दात्रि हार्यो पै न टार्यो टसकत है ।  
परम गहीली बसुदेव-देवकी की मिली  
चाह चिमटी हूँ सा न खेचो छसकत है ॥  
कहत न क्यो हूँ निहाय विथके उपाय सबै  
धीर आक छीर हूँ न धारें घसकत है ।  
ऊधौं प्रज वास के लिसानि को ध्यान धँस्यो  
निसि दिन काटे लौ करेजौ कसकत है ॥

( ७ )

रूप रस पीवत अघात ना हुते जो तब  
मोई अब आंस हूँ उवरि गिरिवी करे ।  
कहै रतनाकर जुदात हूते देखे जिन्ह  
याद किए तिनकी अँवा सी धिरिवी करे ॥  
दिननि के फेर सी भयो है हेर फेर ऐसी  
जाका हेर फेरि हरिवोई हिरवी करे ।  
फिरत हुते जु जिन वुजन में आठौ जाम  
नैननि में अब सोई वुज फिरिवी करे ॥

( ८ )

गोकुल की गैत्र गैल गैल गैल ग्वालिन की  
गोरस के काज लाज वस के बहाइवो ।  
कहै रतनाकर रिमाइयो नवेलिनि की  
गाइवी औ नाचिवी नचाइवो ॥  
कीवी न्रमहार मनुहार के विविध विधि  
मोहिनी मृदुल मजु वासुरी बजाइवो ।  
ऊधौ सुख सपति ममाज ब्रज मडल के  
भूलै हूँ न भूल भूलै हमको भुलाइवो ॥

( ९ )

मोर के पखौवनि को मुकुट छवीलौ छोरि  
श्रीट मनि मडित धराइ करिहै कहा ।  
कहै रतनाकर त्यो माखन-सनेही विनु  
पट रस व्यजन चबाइ करिहै कहा ॥  
गोपो ग्वाल बालनि को शौकि विरहानल में  
हरि सुरब द की बलाइ करिहै कहा ।  
प्यारी नाम गोविंद गुपाल को बिहाइ हाय  
ठाकुर निलोक के कहाइ करिहै कहा ॥

( १० )

कहत गुपाल माल मजु मनि पुजनि की  
गुजनि की माल की मिसाल छवि छावै ना ।  
कहै रतनाकर रतन-मै विरीट अच्छ  
मोर पच्छ-अच्छ-अच्छ असदू सु भावै ना ॥  
जसुमति मया की मलेया अरु माखन की  
काम धेनु गोरस हूँ गूढ गुन पावै ना ।  
गोकुल की रज के कनूका और तिनूका सम  
सपति त्रिलोक की विलोकन में आवै ना ॥

( ११ )

राधा-मुख मजुल-सुधाकर के ध्यान ही सी  
प्रेम रतनाकर हिर्ये यी उमगत है ।  
त्यो ही विरहातप प्रचड सी उमडि अति  
ऊरघ उसास को झकोर यी जगत है ॥  
केवट विचार की विचारी पचि हारि जात  
होत गुनपाल ततकाल नभगत है ।  
करत गभीर धीर लगर न काज कछू  
मन को जहाज डगि डूबन लगत है ॥

( १२ )

सील-सनी सुरुचि सु वात चलै पूरव की  
औरै ओप उमगी दृगनि मिदुराने त ।  
कहै रतनाकर अचानक चमक उठी  
उर घनश्याम क अधीर अकलाने तें ॥  
असाछन दुरदिन दीस्यो सुरपुर मोहिं  
ब्रज मे सुदिन वारि बूद हरियाने तें ।  
नीर की प्रवाह कान्ह-नैननि के तीर बह्यो  
धीर बह्यो ऊधौ-उर अचल रसाने तें ॥



( १३ )

प्रेम भरी कातरता काह की प्रगट होत  
ऊधव अवाई रहे ज्ञान ध्यान सरवे ।  
कहै रतनाकर वरा की वीर धूरि भयी  
मूरि भीति भारनि फनिद फन करवे ॥  
सुर सुर राज सुद्व स्वाराय मुभाव मने  
ससय ममाए बाए धाम विधि हर के ।  
आई फिरि ओप ठाम ठाम ब्रज गामनि के  
तिरहिनि वामनि के राम अग फरवे ॥

( १४ )

हेत खेत माहि खोदि खाई सुद्वस्वारय की  
प्रेम तन गोपि राख्यो ताप गमनी नही ।  
करनी प्रतीत काज करनी वनावट की  
राखी ताहि हेरि हियँ हौसनि सनी नही ॥  
घात म लगे है ये विसामी प्रजवासी सबै  
इनके अनोपे छल छदनि छनो नही ।  
पारनि कितेव तुम्हे वारन कितेव करं  
वारन उवारन ह्वै वारन वनी नही ॥

( १५ )

पाचौ तत्त्व माहि एक सत्व ही की सत्ता सत्य  
याही तत्त्व-ज्ञान को महत्त्व स्रुति गायी है ।  
तुम ती विवेक रतनाकर कहौ क्यौ पुनि  
भेद पञ्चभौतिक के रूप में रचायो है ॥  
गोपिनि में, आप में, वियोग और सजोग हूँ मैं  
एकै भाव चाहिए सचोप ठहरायो है ।  
आपु ही सौ आपुकी मिलाप और विछोह कहा  
मोह यह मिथ्या सुख दुख सत्र ठायो है ॥

( १६ )

दिपत दिवाकर कौ दीपक दिखाव कहा  
तुमसम ज्ञान कहा जानि कहिवी कर ।  
कहै रतनाकर पै लौकिक लगाव मानि  
मरम अलौकिक की थाह यहिवी करै ॥  
असत असार या पसार में हमारी जान  
जन भरमाए सदा ऐस रहिवी कर ।  
जागत औ पागत अनेक परपचनि में  
जैस सपने में अपन कौ लहिवी कर ॥

( १७ )

हा ॥ इह राकन कौ टोक न लगावौ तुम  
विसद विवेक ज्ञान गौरव दुलारे ह्वै ।  
प्रेम-रतनाकर कहत इमि ऊचव सौ  
थहरि करेजौ थामि परम दुखारे ह्वै ॥  
सीतल कस्त नैकु हीतल हमारौ परि  
विषम वियोग ताप समन पुचारे ह्वै ।  
गोपिनि के नैन नीर यान नलिका ह्वै धाइ  
दृगनि हमारे आइ छूटत फुहारे ह्वै ॥

( १८ )

प्रेम नेम निफल निवारि उर अतर त  
ब्रह्म ज्ञान आनद निवान भरि लैहैं हम ।  
कहै रतनाकर सुधाकर मुखीन ध्याव  
आसुनि सौ घोइ जोति जोई जरि लैहैं हम ॥  
आवो एक वार धारि गाकुल-गली की धूरि  
तव इहि नीति को प्रतीति धरि लैहैं हम ।  
मन सौ, करेजे सौ, स्रवन सिर-आखिनि सौ  
ऊचव तिहारी सीख भीख करि लैहैं हम ॥

( १९ )

वात चलै जिनकी उडात धीर धूरि भयो  
ऊग्री मत्र फूकन चले हैं तिन्हें जानी ह्वै ।  
कहै रतनाकर गुपाल के हिये मैं उठी  
हूक मूक भायनि की अकह कहानी ह्वै ॥  
गहवर कड ह्वै न कढन सदेश पायो  
नैन मग तोलों आनि वैन अगवानी ह्वै ।  
प्राकृत प्रभाव सौ पलट मनमानी पाइ  
पानी आज सकल सवार्यो बाज वानी ह्वै ॥

( २० )

ऊवव कै चलत गुपाल उर माहि चल  
आतुरी मची सो परै कहि न कवीनि सौं ।  
कहै रतनाकर हियौ हूँ चलिवे कौ सग  
लाख अभिलाप लै उमहि विकलीनि सौं ॥  
आनि हिचकी ह्वै गरै बीच सकस्योई परै  
स्वेद ह्वै रस्योई परै रोम झझरीनि सौं ।  
आनन दुवार तं उसांस ह्वै बढयोई परै  
आस ह्वै कढयोई परै नैन खिरकीनि सौं ॥

० ० ०

# श्री उद्धव के मथुरा से ब्रज जाते समय के मार्ग के कवित्त

( २१ )

आइ ब्रज-पथ रथ ऊधौ की चढाइ कान्ह  
अकथ कथानि की व्यथा सौं अकुलात हैं ।  
कहै रतनाकर वुझाइ कछु रोकैं पाय  
पुनि कछु ध्याइ उर घाइ उरझात हैं ॥  
रससि उसासनि सौ वहि-बहि आंसनि सौं  
भूरि भरे हिय के हुलास न उरात है ।  
सीरे तपे विविध सँदेसनि सो वातनि की  
धातनि की शो क मै लगेई चले जात हैं ॥

( २२ )

लै कै उपदेस-औ-सँदेस पन ऊधौ चले  
सुजस-वमाइवै उछाह-उदगार में ।  
कहै रतनाकर निहारि कान्ह कातर पै  
आतुर भएयो रह्यो मन न सभार में ॥  
ज्ञान-गठरी की गाँठि छरिक न जान्यौ कब  
हरै-हरै पूजी सब सरकि कछार में ।  
डार में तमालनि की कछु विरमानी अरु  
कछु अरुझानी है करीरनि के झार में ॥

( २३ )

हरै-हरै ज्ञान के गुमान घटि जानि लगे  
जोग के विधान ध्यान हूँ तैं टरिबैं लगे ।  
नैननि में नीर रोम सकल शरीर छयी  
प्रेम-अदभुत सुख सूझि परिवैं लगे ॥  
गोकुल के गाव की गली में पग पारत हीं  
भूमि क प्रभाव भाव औरै भरिबैं लगे ।  
ज्ञान मारतड के सुखाए मनु मानस कीं  
सरस सुहाये घनश्याम करिबैं लगे ॥

# श्री उद्धव के ब्रज में पहुँचने के समय के कवित्त

( २४ )

दुख सुख ग्रीषम और सिसिर न व्यापै जिन्ह  
छापँ छाप एकँ हिय ब्रह्म जान-माने में ।  
कहै रतनाकर गभीर सोई ऊख की  
जीर उघरायो आनि ब्रज के सिवान में ॥  
औरै मुस रग भयो सिथिलित अग भयो  
बँन दधि दग भयो गर गरवाने में ।  
पुलकि पसीजि पास चापि मुरझाने वापि  
जानै कौन वहति प्रयारि बरसाने में ॥

( २५ )

धाई धाम धाम तै अवाई सुनि ऊधव की  
वाम ग्राम लाख अभिलापनि सौ भवै रही ।  
कहै रतनाकर पै विकल विलोकि ति है  
सकन करेजौ थामि आपुनपी खै रही ॥  
लेखि निज भाग लेख रेग नित आनन की  
जानन की ताहि आतुरी सौ मन म्वै रही ।  
आँस रोकि सास रोकि पूछन हुलाम रोकि  
मूरति निरास की सी आस भरी ज्वै रही ॥

( २६ )

भेजे मनभावन के उद्धव के आवन की  
सुधि ब्रज गावनि में पावन जवै लगी ।  
कहै रतनाकर गुवालनि की झौरि झौरि  
दौरि-दौरि नद पौरि आवन तवै लगी ॥  
उझकि-उझकि पद बजनि ते पजनि पै  
पेखि पेछि पाती छाती छोहनि छवै लगी ।  
हमकी निख्यो है कहा, हमकी लिख्यो है कहा  
हमकी लिख्यो है कहा कहन सबै लगी ॥

( २७ )

देखि-देखि आतुरी विकल व्रज-वारिनि की  
ऊधव की चातुरी सकल वहि जाति हैं ।  
कहै रतनाकर कुसल कहि पूछि रहे  
अपर सनेस की न बातें कहि जाति है ॥  
मौन रमना ह्वै जागि जदपि जनायो सवै  
तदपि निरास वासना न गहि जाति हैं ।  
माहस कै कछुक उमाहि पूछियँ का ठाहि  
चाहि उत गोपिका रुराहि रहि जाति है ॥

( २८ )

दीन दशा देखि व्रज बालनि ती ऊधव की  
गरि गी गुमान ज्ञान गौरव गुठाने से ।  
कहै रतनाकर न आए मुप वैन नैन  
नीर भरि न्याए भए सबुचि मिहाने से ॥  
सुखे से खमे से मकवके से सरे से थके  
भूले से ध्रमे भभरे से भकुवाने से ।  
होले मे हले से हल हूले से हिये मैं हाय  
हारे से हरे से रहे हेरत हिराने से ॥

( २९ )

मोह-तम रासि नासिवे की स हुलास चले  
ककी प्रवास पारि मति रति माती पर ।  
कहै रतनाकर पै सुधि उधिरानी सवै  
धूरि परी वीर जोग-जुगति मघाती पर ॥  
चलत विपम ताती बात व्रज वारिनि की  
विपति महान परी भ्रान वरी प्राती पर ।  
लच्छ दुरे सकल विलोकत अलच्छ रहे  
एक हाथ पाती एक हाथ दिये छाती पर ॥

## श्री उद्धव-वचन ब्रजवासियो से

( ३० )

चाहत जो स्वयस सँजोग स्याम-सुन्दर को  
 जोग के प्रयोग में हियो ती त्रिलस्यो रहे ।  
 कहै रतनाकर सु-अन्तर मुखी है ध्यान  
 मजु हिय वज-जगी जोति में वस्यो रहे ॥  
 ऐसे करी लीन आत्मा का परमात्मा में  
 जामें जड चेतन विलास दिक्म्यो रहे ।  
 मोह-वस जोहत विछोह जिय जाकी छोहि  
 सो ती सब अन्तर निरतर वस्यो रहे ॥

( ३१ )

पच तत्त्व में जो सच्चिदानन्द की सत्ता सो ती  
 हम तुम उनमें समान ही समोई है ।  
 कहै रतनाकर विभूति पच भूत हू की  
 एक ही सी सकल पभूतनि मे पोई है ॥  
 माया के प्रपच ही सौ भासत प्रभेद भवें  
 काच फलकनि ज्यो अनेक एक सोई है ।  
 देखी भ्रम पटल उघारि ज्ञान आखिनि सौ  
 काह सब ही मे कान्ह ही में सब कोई है ॥

( ३२ )

सोई कान्ह सोई तुम सोई सबही है लखी  
 घट घट-अन्तर अनन्त स्यामघन कौ ।  
 कहै रतनाकर न भेद-भावना सौ भरी  
 वारिधि औ बूद के विचारि विछुरन कौ ॥  
 अविचल चाहत मित्राप ती विलाप त्यागि  
 जोग जुगती करि जुगावी ज्ञान धन कौ ।  
 जीव आत्मा कौ परमात्मा में लीन करी  
 छीन करौ तन कौ न दीन करौ मन कौ ॥

( ३३ )

सुनि सुनि ऊधव की अकह कहानी कान  
कोऊ थहरानी, कोऊ थानहि थिरानी है ।  
कहै रतनाकर रिसानी, बररानी कोऊ,  
कोऊ विलखानी, विकलानी विथकानी है ॥  
कोऊ सेद-सानी, कोऊ भरि दृग-पानी रही  
कोऊ घूमि-घूमि परी भूमि मुरझानी है ।  
कोऊ स्याम-स्याम के वहवि विललानी कोऊ  
कोमल करेजौ थामि सहमि सुखानी है ॥

० ० ०



## गोपी-वचन उद्धव-प्रति

( ३४ )

रस के प्रयोगनि के सुखद सु जोगनि के  
जेते उपचार चार मजु सुखदाई हैं ।  
तिनके चलावन की चरचा चलावै कौन  
देत ना सुदशन हूँ यों सुधि सिराई हैं ॥  
करत उपाय ना सुभाय लखि नारिनि की  
भाय कयी अनारिनि की भरत कन्हाई हैं ।  
ह्या ती विषमज्वर-वियोग की चढाई यह  
पाती कौन रोग की पठावत दवाई हैं ॥

( ३५ )

ऊधो कहौ मूधो सो सनेस पहिलै तो यह  
प्यारे परदेश तै कबे धो पग पारिहैं ।  
कहै रतनाकर तिहारी परि वातनि में  
मीडि हम कबलों करेजौ मन मारिहैं ॥  
लाइ-नाइ पाती छाती कब लौं सिरैहैं हाय  
धरि-वरि ध्यान वीर कब लगि धारिहैं ।  
वैननि उचारिहैं उराहनौ कबे धो सबै  
स्याम की सलोनी रूप नैननि निहारिहैं ॥

( ३६ )

पटरस न्यजन तो रञ्जन सदा ही करे  
ऊधो नवनीत हूँ स-प्रीति कहूँ पाव हैं ।  
कहै रतनाकर विरद तो वखाने सबै  
साँची कहौ केते कहि लालन लडावें हैं ॥  
रतन-सिंहासन विराजि पाकसासन लौं  
जग-चहुँ-पासनि ती सासन चलावें हैं ।  
जाइ जमुना-तट पै कोउ बट-छाहि माहि  
पाँसुरी उमाहि कवौ बासुरी बजावें हैं ॥

( ३७ )

कान्ह-दूत कंधौ ब्रह्म-दूत ह्वै पधारे आप  
धारे प्रन फेरन को मति ब्रजवारी की ।  
कहै रतनाकर पै प्रीति रीति जानत ना  
ठानत अनीति आनि नीति लै अनारी की ॥  
मान्यौ हम, कान्हब्रह्म एकही कह्यौ जो तुम  
तौहूँ हमे भवति ना भावना अन्यारी की ।  
जंहे बनि बिगरि न बारिधिता बारिधि की  
बूदता विलेहै बूद बिवस विचारी की ॥

( ३८ )

चोप करि चदन चढायौ जिन अगनि पै  
तिनपै वजाइ तूरि धूरि दरिबौ कहौ ।  
रस रतनाकर स नेह निरवार्यौ जाहि  
ता कच को हाय जटा जूट बरिबौ बहौ ॥  
चद अरविद लौ सराह्यौ ब्रजचद जाहि  
ता मुख कौ काकचञ्चवत करिबौ कहौ ।  
छेदि-छेदि छाती छलनी कै चैन-वाननि सौ  
तामैं पुनि ताइ धीर-नीर धरिबौ कहौ ॥

( ३९ )

चिंता मनि मजुल पवारि धूर धारनि में  
काँच मन मुकुर सुधारि रखिबौ कहौ ।  
कहै रतनाकर वियोग-आगि सारन कौ  
ऊग्यौ हाय हमकौ बयारि भखिबौ कहौ ॥  
रूप रस-हीन जाहि निपट निरूपि चुके  
ताकी रूप ध्याइवौ जो रस चखिबौ बहौ ।  
एते बडे विस्व माहि हेरै हूँ न पैसे जाहि,  
ताहि त्रिकुटी में नैन मूदि लखिबौ बहौ ॥

( ४० )

आए ही सिखावन कौ जोग मथुरा तै तीपे  
उवौ ये बियोग के वचन वतरावौ ना ।  
कहै रतनाकर दया करि दरस दीन्यौ  
दुख दरिबैं कौ, तौपै अधिक बढावौ ना ॥  
टूक टूक ह्वै है मन मुकुर हमारौ हाय  
चूकि हू कठोर बैन पाहन चलावौ ना ।  
एक मनमोहन तो वसिकै उजार्यौ मोहि  
हिय मैं अनेक मनमोह वसावौ ना ॥

( ४१ )

चुप रहौ ऊधौ सूधौ पथ मथुरा कौ गहौ  
कहौ न कहानी जौ विविध कहि आए हौ ।  
कहै रतनाकर न बूझिहैं बुझाएँ हम  
करत उपाय वृथा भारी भरमाएँ हौ ॥  
सरल स्वभाव मृदु जानि परी ऊपर तै  
पर उर घाव करि लौन सौ लगाए हौ ।  
रावरी सुधारी में भरी है कुटिलाई कूटि  
वात की मिठाई में लुनाई लाइ ल्याए हौ ॥

( ४२ )

नेम व्रत सजम के पीजरें परे को जत्र  
लाज-बुल-बानि प्रतिवर्धहि निवारि चुकी ।  
बौन गुन गौरव कौ लगर लगावैं जब  
सुधिबुधिही वा भारटेव करि टारि चुकी ॥  
जोग रतनाकर में सास घूटि बूडै कौन  
ऊधौ हम सूधौ यह वानव विचारि चुकी ।  
मुक्ति-मुक्ता कौ मोल मान ही बहा है जब  
मोहन लला पै मन मानिव ही वारि चुकी ॥

( ४३ )

ल्याए लादि वादि ही लगावन हमारे गर  
हम सब जानि कही सुजस-कहानी ना ।  
कहै रतनाकर गुनाकर गुविद हूँ के  
गुननि अनत वेधि सिमिटि समानी ना ॥  
हाथ विन मोल हूँ विकी न मग हूँ मैं कहूँ  
तापे वटमार-टोल लोल हूँ लुभानी ना ।  
केती मिली मुक्ति वधू वर के कूबर मैं  
ऊर भई जो मधुपुर मैं समानी ना ॥

( ४४ )

हम परतच्छ मैं प्रमान अनुमाने नाहि  
तुम भ्रम भौर मैं भलै ही वहिवी करी ।  
कहै रतनाकर गुविद ध्यान धार हम  
तुम मनमानी ससा सिग गहिवी करी ॥  
देखति सो मानति हूँ सुधी यावजानति है  
ऊधो ! तुम देखि हूँ अदेख रहिवी करो ।  
लगि प्रज भूप-रूप अलख अरूप ब्रह्म  
हम न कहैगी तुम लाख कहिवी करो ॥

( ४५ )

रग रूप रहित लयावत सबही है हम  
वैसो एक और ध्याइ धीर धरिहै वहा ।  
कहै रतनाकर जरी है विरहानल मे  
और अब जोति कौ जगाइ जरिहै कहा ॥  
राखी धरि ऊधो उते अलख अरूप ब्रह्म  
तासो काज कठिन हमारे सरिहै कहा ।  
एक ही अनग साधि साध सब पूरी अब  
और अग रहित बरादि करिहै कहा ॥

( ४६ )

कर विनु कैसे गाय दूहिहै हमारी वह  
पद विनु कैसे नाचि थिरकि रिझाइहै ।  
कहै रतनाकर वदन विनु कैसे चाधि  
मासन वजाइ वैनू गोघन गवाइहै ॥  
देखि सुनि कैसे दृग सवन विनाही हाय  
भोरे ब्रजवासिनि को विपति वराइहै ।  
रावरो अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म  
ऊधो कही कौन धी हमारे काम आइहै ॥

( ४७ )

वे ती बस बसन रंगावै मन रंगत ये  
भसम रमावै वे ये आपुही भसम है ।  
साँस-साँस माहिँ बहु वासर वितावत वे  
इनके प्रतेक सास जात ज्यों जनम हैं ॥  
ह्वै कै जग-मुक्ति सी विरक्त भुक्ति चाहत वे  
जानत ये भुक्ति मुक्ति दोऊ विष-सम है ।  
करिकै विचार ऊधो सूधो मन माहिँ लखी  
जोगी सी वियोग भोग भोगी कहा कम हैं ॥

( ४८ )

जोग को रमावै औ समाधि को जगावै इहा  
दुख-सुख सधाधि सी निपट निबेरी हैं ।  
कहै रतनाकर न जानै क्यो इतै धी आइ  
साँसनि की सासना की वासना बखेरी हैं ॥  
हम जमराज की धरावति जमा न बछू  
सुर पति सपति की ब्राह्मति न डेरी है ।  
चेरी हैं न ऊधो ! काहू ब्रह्म के ववा की हम  
सूधो कहे देति एक बान्ह की बमेरी हैं ॥

( ४६ )

सरग न चाहैं अपवरग न चाहैं सुनो  
भुक्ति-भुक्ति दोऊ सौं विरक्ति उर आन हम ।  
कहै रतनाकर तिहारे जोग-रोग माहिं  
तन मन सासनि की सासति प्रमाने हम ॥  
एक ब्रजचद कृपा मद मुसकानि ही मैं  
लोक परलोक की अनद जिय जान हम ।  
जाके या वियोग-दुख हूँ सुख मैं ऐसी कछू  
जाहि पाइ ब्रह्म-सुख हूँ मैं दुख मान हम ॥

( ५० )

जग सपनो सौ सब परत दिखाई तुम्है  
तातें तुम ऊधो हमें सोवत लखात ही ।  
कहैं रतनाकर सुनै को वात सोवत की  
जोई मुह आवत सो विवस वयात ही ॥  
सोवत में जागत लखत अपने की जिमि  
त्यो ही तुम आपही सुजानी समुजात ही ।  
जोग-जोग कवहूँ न जान कहा जोहि जकौ  
ब्रह्म-ब्रह्म कवहूँ वहकि वररात ही ॥

( ५१ )

ऊधो यह ज्ञान को बचान सब वाद हमें  
सूधो वाद छाडि बकवादाहि बढावै कौन ।  
कहै रतनाकर बिलाय ब्रह्म काय माहिं  
आपने सौ आपुनपो आपनो नसावै कौन ॥  
काहूँ तो जनम मैं मिलैगी स्यामसुन्दर का  
याहूँ आस प्राणायाम-सास मैं उढावै कौन ।  
परि कैं तिहारी ज्योति-ज्वाल की जगाजग म  
फेर जग जाइवे की जुगती जरावै कौन ॥

( ५२ )

वाही मुख मजुल की चहति मरोचं सदा  
हमकोँ तिहारी ब्रह्म-ज्योति करिवौ कहा ॥  
कहै रतनाकर मुधाकर-उपासिनि को  
भानु की प्रभानि के जुहारि जरिवौ कहा ॥  
भोगि रही विरचे विरचि के सजोग सबै  
ताके सोग सारन की जोग चरिवौ कहा ॥  
जब ब्रजचद को चकोर चित चारु भयो  
विरह चिगारिनि सौ फेरि डरिवौ कहा ॥

( ५३ )

ऊधौ जम-जातना की वात न चलावौ नैकु  
अब दुख सुख की विवेक करिवौ कहा ॥  
प्रेम-रतनाकर-गभीर पर मीननि को  
इहि भव-गोपद की भीति भरिवौ कहा ॥  
एक वार लैहं मरि मीच की कृपा सौ हम  
रोकि-रोकि सास विनु मीच मरिवौ कहा ॥  
छिन जिन झेली कान्ह-विरह-वलाय तिरहैं  
नरक निकाय की धरक धरित्री कहा ॥

( ५४ )

जोगिनि की भोगिन की विकल वियोगिनि की  
जग में न जागती जमातें रहि जाइंगी ॥  
वहै रतनाकर न सुख के रहे जो दिन  
तो ये दुख-दुःख की न रातें रहि जाइंगी ॥  
प्रेम-नेम छाडि छेम जो बतावत मो  
भीति ही नही तो कहा छात रहि जाइंगी ॥  
घातें रहि जाइंगी न कान्ह की कृपा तै इती  
ऊधौ कहिने वों यम वात रहि जाइंगी ॥

( ५५ )

कठिन करेजो जो न करक्यौ वियोग होत  
तापर तिहारी जन मत्र कँचिहै नही ।  
कहै रतनाकर बरी है विरहानल में  
ब्रह्म की हमार जिय जोति जँचिहै नही ॥  
ऊधौ ज्ञान-भान की प्रभानि ब्रजचद बिना  
चहकि चकोर चित चोपि नचिहै नही ।  
स्याम-रँग-राँचे साचे हिय हम ग्वारिनि कै  
जोग की भगौही भेष-रेख रँचिहै नही ॥

( ५६ )

नैननि के नीर औ उसीर सौ पुलकावलि  
जाहि करि सीरौ सीरी बार्ताहि बिलास हम ।  
कहै रतनाकर तपाई विरहातप की  
आवन न देति जामै विषम उसास हम ॥  
सोई मन-मन्दिर तपावन के काज आज  
रावरे कहे तँ ब्रह्म-जोति लै प्रकासे हम ।  
नद के कुमार सुकुमार कौ वसाइ यामै  
ऊधौ अब आइ कै विसास उदवासै हम ॥

( ५७ )

जोहँ अभिराम स्याम चित का चमक हो मैं  
औ कहा ब्रह्म की जगाइ जोति जोहँगी ।  
कहै रतनाकर तिहारी वात ही सौ हकी  
साँस की न सासति कै औरी अवरीहँगी ॥  
आपुहि भई है मृगछाला ब्रज-लाला सूखि  
तिनपै अपर मृगछाला कहा सोहँगी ।  
उधौ मुक्ति-माल बृथा मढत हमारे गरै  
कान्ह बिना तासो कही काकी मन मोहँगी ॥



( ५८ )

कीजँ ज्ञान भानु को प्रकास गिरि-सू गनि पै  
ब्रज में तिहारी कला नैकु छटिहैं नही ।  
कहै रतनाकर न प्रेम-तरु पैहै सूखि  
याकी डार-पात तृन-तूल घटिहैं नही ॥  
रसना हमारी चारु चातकी वनी है उधौ  
पी-पी की विहाइ और रट रटिहै नही ।  
लौटी-पौटी वात को बबडर बनावत क्या  
हिय तै हमारे घनश्याम हटिहै नही ॥

( ५९ )

नेननि के आगँ नित नाचत गुपाल रहै  
र्याल रहै सोई जो अनय-रसवारे है ।  
कहै रतनाकर सो भावना भरीयै रहै  
जाके चाव भाव रचै उर मै अखारेहैं ॥  
ब्रह्म हूँ भए पै नारि ऐसियै वनी जो रहैं  
तौ तौ सहैं सीस सब वैन जो तिहारेहैं ।  
यह अभिमान तौ गव हूँ ना गये हूँ प्रान  
हम उनकी है वह प्रीतम हमारे है ॥

( ६० )

सुनी गुनी समझी तिहारी चतुराई जितो  
कान्ह ही पढाई कविताई कुवरी की हैं ।  
कहै रतनाकर त्रिकाल हू त्रिलोक हू म  
आन अननैकु ना त्रिदेव की कही कीहैं ॥  
कहहि प्रतीति प्रीति नीति हू त्रिवाचा वाधि  
ऊधौ साच मन की हिये की अरुजी की हैं ।  
वै तो हैं हमारे ही हमारे हमारे ही और  
हम उनही की उनही की उनही की हैं ॥

( ६१ )

नेम व्रत सजम के आसन अखड लाइ  
सांसनि कौ घूटिहै जहा ली गिलि जाइगी ।  
कहै रतनाकर धरंगी मृगछाला अरु  
धूरिहू दरगी जऊ अग छिलि जाइगी ॥  
पाच आचि हूँ की झार झेलिहै निहारि जाहि  
रावरौ हू कठिन करेजी हिलि जाइगी ।  
सहिहै तिहारे कहै सांसति सवे पै वस  
यती कहि देहु कै कन्हैया मिलि जाइगी ॥

( ६२ )

साधि लैहैं जोग के जटिल जे विधान ऊधो  
वांधि लैहैं लकनि लपेटि मृगछाला हू ।  
कहै रतनाकर सु भेलि लहैं छार अग  
झेलि लैहैं ललकि घनेरे घाम पाला हू ॥  
तुम तो कही और अनकही कहि लीनो सबे  
अव जी कही तो कह कछु ब्रज-बाला हू ।  
ब्रह्म मिलिबैं तै कहा मिलव वतावी हम  
ताको फल जव ली मिलैं ना नन्दलाला हू ॥

( ६३ )

साधिहै समाधि ओ अराधिहै सबे जो कही  
आधि-व्याधि सकल स-साध सही लैहैं हम ।  
कहै रतनाकर पै प्रेम-प्रन-पालन कौ  
नेम यह निपट सछेम निग्वैहैं हम ॥  
जहै प्रान-पट लै सरूप मनमोहन कौ  
तातैं ब्रह्म रावरे अनूप कौ मिलैहैं हम ।  
जीपै मिल्यो तो घाइ चाय मी मिलगी पर  
जौ न मिल्यो तो पुनि इहा ही लौटि ऐह हम ॥



( ६७ )

घरि राखी ज्ञान गुन गौरव गुमान गोइ  
गोपिन की आवत न भावत भडग है ।  
कहै रतनाकर करत टाय-टाय वृथा  
सुनत न कोउ इहाँ मुहचग है ॥  
और हू उपाय केते सहज सुढङ्ग ऊधी  
साँस रोकियो की कहा जोग ही कुढङ्ग है ।  
कुटिल कटारी है उतङ्ग अति  
जमुना-तरग है तिहारी सतसङ्ग है ॥

( ६८ )

प्रथम भुराइ चाय-नाय पै चढाइ नीकें  
न्यारी करी कान्ह कुल-कूल हितकारी तैं ।  
प्रेम रतनाकर की तरल तरङ्ग पारि  
पलटि पराने पुनि प्रन-पतवारी तैं ॥  
और न प्रकार अब पार लहिवै कौ कछू  
अटक रही हैं एक आस गुनवारी तैं ।  
सोऊ तुम आइ वात विपम चलाइ हाय  
काटन चहत जोग कठिन कुठारी तैं ॥

( ६९ )

प्रेम-पाल पलटि उलटि पतवारी-पति  
केवट परान्यो कूव-तुँवरी अघार लैं ।  
कहै रतनाकर पठायी तुम्हें तापै पुनि  
लादन कौ जोग कौ अपार अति भार लैं ॥  
निरगुन ब्रह्म कहौ रावरी बनैहै कहा  
ऐहै कछु काम हूँ न लङ्गर लगार लैं ।  
विपम चलावौ ज्ञान-तपन-तपी ना वात  
पारी कान्ह तरनी हमारी मझघार लैं ॥

( १४ )

कान्ह हूँ सौं आन ही विधान करिवे वी ब्रह्म  
मधुपुरियान की चपल कखियाँ चहै ।  
कहै रतनाकर हस कं कही रोवे अव  
गगन-अथाह-थाह लेन मखिया चह ॥  
अगुन-सगुन फद-वन्द निरवारन कौं  
वारन कौ न्याय की नुकीली नखियाँ चहै ।  
मोर-पखियाँ की मोर-वारौ चारु चाहन कौ  
ऊधी अखिया चहै न मोर-पखियाँ चहै ॥

( १५ )

ढोग जात्यौ ढरकि परकि डर सोग जात्यौ  
जोग जात्यौ सरकि स-कँप कँखियानि तैं ।  
कहै रतनाकर न लेखते प्रपञ्च ऐंठि  
बैठि घरा लेखते कहूँघाँ नखियानि तैं ॥  
रहते अदेख नाहिं बेप वह देखत हूँ  
देखत हमारी जान मोर पँखियानि तैं ।  
ऊधी ब्रह्म ज्ञान वी बखान करते न नैकु  
देख लेते काह जौ हमारी अँखियानि तैं ॥

( १६ )

चाव सौ चले हौ जोग-चरचा चलाइवै की  
चपल चितौनि त चुचात चित-चाह है ।  
कहै रतनाकर पै पार ना बसैहै कछू  
हेरत हिरँहै भर्यौ जो उर उछाह है ॥  
अडे लौं टिट्टेहरी वे जँहै जू विवेक वहि  
फँरि लहिवे को ताके तनक न राह है ।  
यह वह सिंधु नाइँ सोखि जो अगस्त लियौ  
ऊधी यह गोपिन के प्रेम कौ प्रवाह है ॥

( ६७ )

घरि राखी ज्ञान गुन गौरव गुमान गोइ  
गोपिन की आवत न भावत भडग है ।  
कहै रतनाकर करत टाय-टाय वृथा  
सुनत न कोउ इहाँ मुहचग है ॥  
और हू उपाय केते सहज सुढङ्ग ऊधौ  
सास रोकियो को कहा जोग ही कुढङ्ग है ।  
कुटिल कटारी है उतङ्ग अति  
जमुना-तरग है तिहारौ सतसङ्ग है ॥

( ६८ )

प्रथम भुराइ चाय-नाय पै चढाइ नीकै  
न्यारी करी कान्ह कुल-कूल हितकारी तैं ।  
प्रेम रतनाकर की तरल तरङ्ग पारि  
पलटि पराने पुनि प्रन-पतवारी त ॥  
और न प्रकार अब पार लहिगै को बछू  
अटकि रही हैं एक आस गुनवारी तैं ।  
सोऊ तुम आइ वात विपम चलाइ हाय  
काटन चहत जोग कठिन कुठारी तैं ॥

( ६९ )

प्रेम-पाल पलटि उलटि पतवारी-पति  
केवट परान्धौ कूव-तुवरी अधार लैं ।  
कहै रतनाकर पठायी तुम्हें तापै पुनि  
लादन कौ जोग को अपार अति भार लैं ॥  
निरगुन ब्रह्म कहौ रावरी वनैहै कहा  
ऐहै कछु काम हूँ न लङ्गर लगार लैं ।  
विपम चलावौ ज्ञान-तपन-तपी ना वात  
पारी कान्ह तरनी हमारी मझधार लैं ॥

( ७० )

प्रथम भुराइ प्रेम-पाठनि पढाइ उन  
तन-मन कीन्हे विरहागि के तपेला है ।  
कहै रतनाकर तयो आप अब तापै आइ  
सासनि की सांसति के झारत झमेला है ॥  
ऐसे-ऐसे सुभ उपदेश के दिवैयनि की  
ऊधौ ब्रजदेश में अपेल रेल-रेला है ।  
वे तौ भए जोगी जाइ पाइ कूबरी कौ जोग  
आप कह उनके गुरु है किधौ चेला है ॥

( ७१ )

एते दूरि देसनि सौ सखनि-सदेसनि सौ  
लखन चह जो दसा दुसह हमारी है ।  
कहै रतनाकर पै बिपम वियोग-विथा  
सवद-विहीन भावना की भाववारी है ॥  
आपें उर अतर प्रतीति तातें हम  
रीति नीति निपट भुजगनि की यारी है ।  
आँखनि तें एक तौ सुभाव सुनिबै कौ लियो  
काननि तें एक देखिबै की टेक धारी है ॥

( ७२ )

दीनाचल कौ ना यह छटक्यौ कनूका जाहि  
छाइ छिगुनी पै छेम-छत्र छिति छायो है ।  
कहै रतनाकर न कूबर बधू-बर कौ  
जाहि रच राच पानि परिस गँवायो है ॥  
यह गरु प्रेमाचल दृढ-व्रत धारिनि कौ  
जाक भर भाव उनहूँ कौ सकुचायो है ।  
जानै कहा जानि कै अजान हूँ सेजान कान्ह  
ताहि तुम्हें वात सौ उडावन पठायो है ॥

( ७३ )

सुधि बुधि जाति उडी जिनकी उसास निसौ  
तिनकी पठायौ कहा धीर धरि पाती पर ।  
कहै रतनाकर त्यों विरह-बताय ढाड़  
मुहर नगाइ गए सुख-थिर-थाती पर ॥  
और जो कियो सो कियो ऊधौ पै न कोऊ बियौ  
ऐसी घात धूनी करै जनम-सँघाती पर ।  
कूबरी की पीठ तँ उतारि भार भारी तुम्हें  
भेज्यौ ताहि थापन हमारी छीन छाती पर ॥

( ७४ )

सुधर सलोने स्यामसुंदर सुजान कान्ह  
करुना-निधान के बसीठ बनि आए ही ।  
प्रेम-प्रनधारी गिरधारी को सनेसी नाहि  
होत है अँदेश झूठ बोलत बनाए ही ॥  
ज्ञान-गुन गौरव-गुमान-भरे फूले फिरौ  
बचक के काज पै न रचक बराए ही ।  
रसिक-सिरीमनि कौ नाम बदनाम करौ  
मेरी जान ऊधौ कूर-कूबरी-पठाए ही ॥

( ७५ )

कान्ह कूबरी के हिय हुलसे सरोजनि तँ  
अमल अनन्द मकरद जो डरारै है ।  
कहै रतनाकर, यौ गोपी उर सचि ताहि  
तामैं पुनि आपनौ प्रपञ्च रच पारै है ॥  
आइ निरगुन गाइ ब्रज मैं जो अब  
ताकी उद्गार ब्रह्मज्ञान रस गारै है ।  
मिलि सो तिहारी मधु मधुप हमार नेह  
देह मैं अछेह विष विषम बगारै है ॥



( ७६ )

सीता असगुन कौ कटाई नाक एक वेरि  
सोई करि कूब राधिका पै फेरि फाटी है ।  
कहै रतनाकर परेखौ नाहि याकौ नेकु  
ताकी तौ सदा की यह पाकी परिपाटी है ॥  
सोच है यहै कै सग ताके रगभीन माहि  
कौन धौ अनोखौ ढङ्ग रचत निराटी है ।  
छाँटि देत कूबर कै आटि देत डाँट कोऊ  
कानि देत खाट किधौ पाटि देत माटी है ॥

( ७७ )

आए कसराइ के पठाए वे प्रतच्छ तुम  
लागत अलच्छ कुब्जा के पच्छवारे ही ।  
कहै रतनाकर वियोग लाड लाई उन  
तुम जोग बात के ब्रवडर पसारे ही ॥  
कोऊ अवलानि पै न ढरकि ढरारे होत  
मधुपुरवारे सब एके ढार ढारे ही ।  
ले गए अक्रूर क्रूर तन तै छुडाइ हाय  
ऊधौ तुम मन तै छुडावन पधारे ही ॥

( ७८ )

आए हौ पठाए वा छतीसे छलिया के इतै  
वीस विसै ऊधौ धीरवावन कलांच ह्वै ।  
कहै रतनाकर प्रपञ्च न पसारौ गाढे  
वाढे पै रहौगे साढे वाइस ही जांच ह्वै ॥  
प्रेम अरु जोग में है जोग छठै-आठै पर्यो  
एक ह्वै रहै क्यो दोऊ हीरा अरु कांच ह्वै ।  
तीन गुन पाच तत्त्व वहकि बतावत सो  
जहै तीन-त्तेरह तिहारी तीन-पाघ ह्वै ॥

( ७६ )

कस के कहे सौ जदुवस कौ बताइ उन्हे  
तैसे ही प्रससि कुब्जा पै ललचायी जी ।  
कहै रतनाकर न मुष्टिक चनूर आदि  
मल्लनि कौ ध्यान आनि हिय कसकायी जी ॥  
नद जसुदा कौ सुखमूरि करि धूरि सबै  
गोपी ग्वाल गैयनि पै गाज लै गिरायी जा ।  
होते कहूँ क्रूर तौ न जानै करते धौ कहा  
एतौ क्रूर करम अक्रूर ह्वै कमायी जी ॥

( ८० )

चाहत निकारत तिन्है जो उर-अतरतै  
ताको जोग नाहि जोगमन्तर तिहारे मै ।  
कहै रतनाकर बिलग करिबे मै होति  
नीति विपरीत महा कहति पुकारे मै ॥  
ताते तिन्हे ल्याइ लाइ हिय ते हमारे बेगि  
सोचियै उपाय फेरि चित्त चेतवारे मै ।  
ज्यौ ज्यौ वसे जात दूरि दूरि प्रिय प्रान मूरि  
त्यौ त्यौ धँसे जात मन-मुकुर हमारे मै ॥

( ८१ )

ह्या तौ ब्रजजीवन सौं जीवन हमारो हाय  
जाने कौन जीव ल उहाँ के जन जनमै ।  
कहै रतनाकर बतावत कछु कौ कछु  
ल्यावत न नैकु हूँ विवेक निज मन मै ॥  
अच्छनि उधारि ऊधो करहु प्रतच्छ लच्छ  
इत पसु पच्छनि हूँ लाग है लगन मै ।  
काहू की न जीहा करै ब्रह्म की समीहा सुनौ  
पीहा पीहा रतत पीहा मधुवन मै ॥

( ८२ )

वाढ्यौ ब्रज पै जो ऋतन मधुपुर-वासिनि कौ  
तासौ ना उपाय काहूँ भाय उमहन कौ ।  
कहै रतनाकर विचारत हुती सी हम  
कोऊ सुभ जुवित तासौ मुक्त ह्वै रहन का ॥  
कीयो उपकार दीरि दोउनि अपार ऊँधौ  
सोई भूरिभार सौँ उवारता लहन कौ ।  
लै गयो अक्रूर क्रूर तव सुख मूर कान्ह  
आए तुम आज प्रान-व्याज उगहन कौ ॥

( ८३ )

पुरती न जोपै मोर चद्रिका किरिटी काज  
जुरती कहा न काँच किरचै कुभाय की ।  
कहै रतनाकर न भावते हमारे नैन  
तौ न कहा पावते कहूँधौ ठाय पाय की ॥  
मान्यौ हम मान कै न मानती मनाए वेगि  
कीरति कुमारि सुकुमारी चित-चाय की ।  
याही सोच माहिं हम दूवरी कै कहा  
कवरी हू होती न पतोहू नदराय की ॥

( ८४ )

हरि तन पानिप के भोजन दृगचल तै  
उमगि तपन त तपाक वरि धावै ना ।  
कहै रतनाकर त्रिलोक-ओकमडल म  
वेगि ब्रह्मद्रव उपद्रव मचावै ना ॥  
हर की समेत हर गिरि के गुमान गारि  
पल म पतालपुर पैठन पठावै ना ।  
फैलै बरसाने म न रावरी कहानी यह  
वानी कहूँ राधे आधे वान मुनि पावै ना ॥

(८५)

आतुर न होहु ऊधौ आवति दिवारी अबै  
बैसियै पुरदर-कृपा जौ लहि जाइगी ।  
होत नर ब्रह्म ब्रह्म-ज्ञान सौं बत्तावत जो  
कछु इहि नीति की प्रतीति गहि जाइगी ॥  
गिरिवर धारि जौ उवारि ब्रज लोन्यौ बलि  
तौ तौ भाति काहूँ यह बात रहि जाइगी ।  
नातरु हमारी भारी विरह-बलाय सग  
सारी ब्रह्म-ज्ञानता तिहारी वहि जाइगी ॥

(८६)

आवत दिवारी बिलखाइ ब्रज-वासी कहै  
अबक हमारै गाव गोधन पुजैहै को ।  
कहै रतनाकर विविध पकवान चाहि  
चाह सौ सराहि चख चचल चलैहै को ॥  
निपट निहारे जोरि हाथ निज साथ ऊधौ  
दमकति दिव्य दीपमालिका दिखैहै को ।  
कवरी के कूबर ते उवरि न पावै कान्ह  
इन्द्र-कोप-लोपक भुवधन उठैहै को ॥

(८७)

विकसित बिपिन बसतिकावली कौरग  
लखियत गोपिन के अग पियराने में ।  
बौरै बृद लसत रसाल बर बारिनि के  
पिक की पुकार है चवाव उमगाने में ॥  
होत पतझर झार तरुनि-समूहनि कौ  
बैहरि बत्ताव लै उसास अधिनाने में ।  
काम-विधि बाम की कला में मीन-मेप बहा  
ऊधौ नित बसत बसन्त चरसाने में ॥

( ८८ )

ठाम ठाम जीवनविहीन दीन दीशैं सब  
चलित चवाई-बात तापत घनी रहै ।  
कहै रतनाकर न चैन दिन-रैन परं  
सुखी पत-छीन भई तरुनि अनी रहै ॥  
जारयो अग अब तौ विधाता है इहा कौ भयो  
तातैं ताहि जारन की ठसक ठनी रहै ।  
दगर-दगर वृषभान के नगर नित  
भीषम प्रभाव ऋतु ग्रीषम बनी रहै ॥

( ८९ )

रहित सदाई हरियाई हिय-धायनि म  
ऊरध उदास सो झकोर सो पुरवा की है ।  
पीव पीव गोपी पीर-पूरित पुकारति है  
सोई रतनाकर पुकार पपिहा की है ॥  
लागी रहै नैनहि सी नीर की झरी ओ  
उठै चित म चमक सो चमक चपला की है ।  
विनु घनस्याम धाम धाम ब्रज मण्डल में  
ऊधौ नित वसति वहार वरसा की है ॥

( ९० )

जात घनस्याम के ललात दृग कज पाँति  
घेरी दिख-साध भार-भीर की अनी रहै ।  
कहै रतनाकर बिरह बिछु वाम भयो  
चन्द्रहास ताने घात घातल घनी रहै ॥  
सीत-धाम वरपा-विचार विनु आने ब्रज  
पचवान-वाननि की उमड ठनी रहै ।  
काम बिधना सीं लहि फरद दवामी सदा  
दरद दिवैया नृतु सरद बनी रहै ॥

( ६१ )

रीते परे सकल निपग कुमुमायुध के  
दूर दुरे कान्ह पे न ताते चलै चारौ है ।  
कहै रतनाकर बिहाइ वर मानस की  
लीन्यौ है हुलास-हस वास दूरिवारी है ॥  
पाला परे आस पे न भावत बतास बारि  
जात कुम्हलात हियौ कमल हमारी है ।  
पट ऋतु ह्वै है कहूँ अवत दिगतनि में  
इत तौ हिमत की निरन्तर पसारी है ॥

( ६२ )

कापि-काँपि उठत करेजी कर चापि-चाँपि  
उर ब्रजवासिनि कै ठिठुर ठनी रहे ।  
कहै रतनाकर न जीवन सुहात रच  
पाला की पटास परी आसनि घनी रहै ॥  
वारिनि में बिसद बिकास ना प्रकास करे  
अलिनि बिलास में उदासता सनी रहै ।  
माधव के आवन की आवतिं न बातें नैकु  
नित प्रति तात ऋतु सिसिर बनी रहै ॥

( ६३ )

माने जब नैकु ना मनाए मनमोहन के  
तोपै-मन-मोहिनि मनाए कहा मानी तुम ।  
कहै रतनाकर मलीन मकरी ली नित  
आपुनोही जाल अपने ही पर तानी तुम ॥  
कबहूँ परे न नैन-नीर हूँ के फेर माहि  
पैरिबौ सनेह मिधु माहि कहा ठानी तुम ।  
जानत न ब्रह्म हूँ प्रमानत अलच्छ ताहि  
तोपै भला प्रेम की प्रतच्छ कहा जानी तुम ॥

( ६४ )

हाल कहा बूझत बिहाल परी बाल सब  
वसि दिन द्वँव देखि दुगनि सिधाइयो ।  
रोग यह कठिन न ऊधो बहिरे रे जोग  
सूधो सो सन्देस याहि तू न ठहराइयो ॥  
औसर मिलै औ सर-साज बछु पूर्छहि तो  
कहियो बछु न दसा देखी सो दिखाइयो ।  
आह वे कराहि नैन नीर अवगाहि बछु  
बहिरे कौ चाहि हिचकी लै रहि जाइयो ॥

( ६५ )

नद जसुदा औ गाय गोप गोपिका की कछु  
वात वृषभान-भौन हूँ को जनि कीजियो ।  
कहै रतनाकर कहति सब हा हा पाइ  
ह्याँ के परपचनि सो रच न पसीजियो ॥  
आस भरि ऐहै औ उदास मुख ह्वँ हाय  
ब्रज-दुख-त्रास की न तातै साँस लीजियो ।  
नाम को बताइ औ जताइ गाम ऊधो बस  
स्याम सो हमारी राम-राम कहि दीजियो ॥

( ६६ )

ऊधो यहै सूधो सो सदेस कहि दीजौ एक  
जानति अनेक न विवेक ब्रज-बारी हैं ।  
कहै रतनाकर असीम रावरी तो क्षमा  
छमता कहां लीं अपराध की हमारी हैं ॥  
दीजै और ताजन सबे जो मन भावै पर  
कीजै न दरस रह बचित बिचारी हैं ।  
भली हैं बुरी हैं औ सलज्ज निरलज्ज हूँ हैं  
जो कहै सो हैं पै परिचारिका तिहारी हैं ॥

✽

## उद्धव के ब्रज से विदा होते समय के कवित्त

( ६७ )

धाई जित-तित तँ विदाई-हेत ऊधव की  
गोपी भरी आरति सँभारति न सांसुरी ।  
कहै रतनाकर मयूर-पच्छ कोऊ लिए  
कोऊ गुज-अजलि उमाहे प्रेम आसुरी ॥  
भाव-भरी कोऊ लिए रुचिर सजाव दही  
कोऊ मही मजु दावि दलकति पांसुरी ।  
पीत पट नद जसुमति नवनीत नयो  
कीरति-कुमारी सुरवारी दई बांसुरी ॥

( ६८ )

कोऊ जोरि हाथ कोऊ नाइ नम्रता सौ माथ  
भापन की लाख लालसा सौ नहि जात है ।  
कहै रतनाकर चलत उठि ऊधव के  
कातर ह्वँ प्रेम सौ सकल महि जात है ॥  
सबद न पावत सौ भाव उमगावत जो  
ताकि-ताकि आनन ठगे से ठहि जात है ।  
रचक हमारी सुनौ रचक हमारी सुनौ  
रचक हमारी सुनो कहि रहि जात हैं ॥

( ६९ )

दावि-दावि छाती पाती-लिखन लगायौ सर्व  
व्योत लिखि वैं कौ पं न कोऊ करि जात हैं ।  
कहै रतनाकर फुरति नाहि बात कछू  
हाथ धरयौ ही तल यहरि थरि जात है ॥  
ऊँधों के निहोरँ फेरि नकु घोर जोरँ पर  
ऐसो अन्त ताप कौ प्रताप भरि जात है ।  
सूखि जाति त्याही लेखिनी कँ नैकु डक लागँ  
अक लागँ कागद वररि वरि जात है ॥



( १०० )

कोऊ चले काँपि सग कोऊ उर चाँपि चले  
कोऊ चले कछुक अलाहि हलवल से ।  
कहै रतनाकर सुदेश तजि कोऊ चले  
कोऊ चले कहत सन्देश अवरल से ॥  
आँस चले काहू के सु काहू के उसास चले  
काहू के हियँ पै चन्दहास चले हल से ।  
ऊधव कँ चलत चलाचल चली यौ चल  
अचल चले औ अचले हू भए चल से ॥

( १०१ )

दीन्यौ प्रेम-नेम-गरुवाई गुन ऊधव कौ  
हिय सौ हमेव-हरुवाई बहिराइ कै ।  
कहै रतनाकर त्यौ कचन बनाई काय  
ज्ञान-अभिमान की तमाई विनसाइ कै ॥  
वतानि कौ धोक सो धमाइ चहँ कोदनि सौ  
निज विरहानल तपाइ पधिलाइ कै ।  
गोप की बधूटी प्रेम-बूटी के सहारे मारे  
चल चित-पारे की भसम मुरकाइ कै ॥

✽

## उद्धव के ब्रज से लौटते समय के कवित्त

(१०२)

गोपी, ग्वाल, नद, जसुदा सौं तीविदा ह्वै उठे  
उठित न पाय पै उठावत डगत है।  
चहै रतनाकर सभारि सारथी पै नीठि  
दीठिन वचाइ चाल्यो चोर ज्यो भगत है ॥  
कुजनि की कूल की कलिंदी की हूँदी दसा  
देखि-देखि आंस औ उसांस उमगत हैं।  
रथ तै उतरि पथ पावन जहाँ ही तहा  
विकल विसूरि घूरि लोटन लगत हैं ॥

(१०३)

भूले जोग-छेम प्रेम-नेमहि रिहारि ऊघी  
सकुचि समाने उर-अन्तर हरास लौ।  
कहै रतनाकर प्रभाव सब ऊने भए  
सूने भए नैन बैन अरथ-उदास लौ ॥  
माँगी विदा माँगत ज्यो मीच उर भीचि कोऊ  
की-यो मौन गीन निज हिय के हुलास लौ।  
विथकित सास-लो चलत रुकि जात फेरि  
आंस लौ गिरत पुनि उठत उसाम लौ ॥

✽

# उद्धव के मथुरा लौट आने के समय के कवित्त

(१०४)

चल-चित-पारद की दम्भ कचुली क द्वार  
 ब्रज-मग धूरि प्रेम-मूरि सुभ-सीली ल।  
 कहै रतनाकर सु जोगनि विधान भावि  
 अमित प्रमान ज्ञान गन्धक गुनीली लै ॥  
 जारि घट-अन्तर ही आह-धूम धरि सबै  
 गोपी विरहागिनि निरन्तर जगीली ल।  
 आए लौटि ऊधव विभूति भव्य भायनि की  
 वायनि की रुचिर रसायन रसीली लै ॥

(१०५)

आए लौटि लज्जित नवाए नैन ऊधौ अव  
 सब सुख साधन को सूधौ सो जतन लै।  
 कहै रतनाकर गवाए गुन गौरव औ  
 गरव-गढी को परिपूरन पतन ल ॥  
 छाए नैन नीर पीर-नसब बमाए उर  
 दीनता अधीनता के भार सो नतन ल।  
 प्रेम-रस रुचिर विराग-तूमढी में पूरी  
 ज्ञान-गूढढी में अनुराग सो रतन लै ॥

(१०६)

आए दौरि पौरि लौ अगार्द गुन ऊधव की  
 ओर ही विनोबि दगा दूग भरि नेत है।  
 कहै रतनाकर त्रिलोबि विलगान उठै  
 येऊ भर गापा बनेज धरि नेत है ॥  
 आर्वाणि बछून पूछिये औ बहिये की मा  
 परत न माहम में दोऊ दरि नेत है।  
 जाना उदान माग भरि उरगौ है बरि  
 गौ है बरि जानि तियो है बरि भग है ॥

उद्धव

(१०७)

प्रेम-मद-छाके पग परत कहां के कहां  
थाके अग नैननि सिथिलता सुहाई है ।  
कहै रतनाकर यो आवत चकात उधो  
मानो सुधियात कोउ भावना भुलाई है ॥  
धारत धरा पे ना उदार अति आदर सो  
सारत बँहोलनि जो आस-अधिकारी है ।  
एक कर राजै नवनीत जसुदा को दियो  
एक कर व सी वर राधिका पठाई है ॥

(१०८)

श्रज-रजरजित सरीर सुभ उधव को  
धाइ बलवीर ह्वँ अधीर लपटाये लेत ।  
कहै रतनाकर सु प्रेम-मद-माते हेरि  
थरकति वाँह थामि थहरि थिराए लेत ॥  
कीरति कुमारी के दरस-रस सद्य ही को  
छलकनि चाहि पलकनि पुलकाए लेत ।  
परन न देत एक बूद पुहुमी की कोछि  
पाछि-पोछि पट निज नैननि लगाए लेत ॥

॥

# ब्रज से लौटने पर उद्धव-वचन श्री भगवान्-प्रति

(१०६)

आँसुनि की धार औ उभार कौं उसासनि के  
 कहै रतनाकर तार हिचकीनि के तनक टरि लेन देहु ।  
 फुरन देहु वात रच  
 भावनि के विपम प्रपच सरि लेन देहु ॥  
 आतुर ह्वँ और हूँ न कातर बनावौ नाथ  
 नैसुक निवारि पीर धीर धरि लेन देहु ।  
 कहत अबै हूँ कहि आवत जहाँ लौं सबै  
 नैकु थिर कढत करेजी करि लेन देहु ॥

(११०)

रावरे पठाए जोग देन कौ सिधाए हुते  
 ज्ञान गुन गौरव के अति उद्गार मै ।  
 कहै रतनाकर पै चातुरी हमारी सबै  
 कित धौं हिरानी दसा दारुन अपार मै ॥  
 उडि उधिरानी किधो उरघ उसासनि में  
 वहि धौ विलानी कहू आसुनि की धार मै ।  
 चूर ह्वँ गई धौ विरहानल की झार मै ।  
 छार ह्वँ गई धौ विरहानल की झार मै ॥

(१११)

सीत घाम-भेद खेद सहित लखाने सबै  
 भूले भाव भेदता-निषेधन विधान के ।  
 कहै रतनाकर न ताप ब्रजवालनि के  
 काली मुख-ज्वाल ना दवानल समान के ॥  
 पटक पराने ज्ञान गठरी तहाँ ही हम  
 थमत बन्यो न पास पहुचि सिवान के ।  
 छाले परे पगनि अधर पर जाले परे  
 कठिन कसाले परे लाले परे प्रान के ॥

उद्धव-वचन

(११२)

ज्वालामुखी गिरि तै गिरत द्रवे द्रव्य कैधो  
बारिद पियौ है बारि विप के सिवाने मे ।  
कहै रतनाकर कै काली दाव लेन-काज  
फेन फुफकारै उहि गावै दुख-साने में ॥  
जीवन ब्रियोगिनि की मेघ अचयी सो किधो  
उपच्यो पच्यो न उर ताप अधिकाने में ।  
हरि-हरि जासो बरि बरि सब बारी उठै  
जानै कौन बारि बरसत बरसाने में ॥

(११३)

लैके पन सूछम अमोल जो पठायौ आप  
ताकी मोल तनक तुल्यौ न तहा साँठी तै ।  
कहै रतनाकर पुकारे ठौर-ठौर पर  
पीरि वृषभानु की हिरान्यौ मति नाठी तै ॥  
लीजै हेरि आपुहि न हेरि हम पायो फेरि  
याहि फेर माहि भए माठी दधि आँठी तै ।  
ल्याए धूरि पूरि अग अगनि तहाँ की जहाँ  
ज्ञान गयो सहित गुमान गिरि आठी तै ॥

(११४)

ज्योही कछु कहन सन्देश लग्यो त्योहि लख्यो  
प्रेम पूर उमगि गरे ली चढयो आवै है ।  
कहै रतनाकर न पाँव टिकि पावै नैकु  
ऐसौ दृग-द्वारनि स-वेग बढयो आवै है ॥  
मधुपुरि राखन को वेगि कछु ब्यौत गढी  
घाइ चढी बट वं न जोपै गढयो आवै है ।  
आयो भज्यो भूपयिभगीरथ लौं हौं तौं नाथ  
साथ लग्यो सोई पुन्य-पाप बढयो आवै है ॥

(११५)

जहै व्यथा विषम विलाइ तुम्हें देखत ही  
तातें कही मेरी कहूँ झूठि ठहरावी ना।  
कहै रतनाकर न याही भय भायें भूरि  
याही कहैं जावौ बस विलम्ब लगावौ ना ॥  
एतौ और करत निवेदन स वेदन हैं  
याकौ कछु बिलग उदार उर ल्यावौ न।  
तब हम जानें तुम धीरज धुरीन जब  
एक बार उधौ बनि जाइ पुनि जावौ ना ॥

(११६)

छावते कुटीर कहूँ रम्य जमुना कै तीर  
गौन नौन-रेती सौ कदापि करते नही।  
कहै रतनाकर बिहाइ प्रेम गाथा गूढ  
खौन रमना मे रस और भरते नही ॥  
गोपी ग्वाव वालनि के उमडत आँसु देखि  
लेखि प्रलयागम हूँ नैकु डरते नही।  
होती चित्त चाव जौ न रावरे चितावन को  
तजि [ब्रज-गाँव इतें पाव धरते नही ॥

(११७)

भाठी के बियोग जोग जटिल लुकाठी लाइ  
लागसो सुहाग के अदाग पिघलाए हैं।  
कहै रतनाकर सुवृत्त प्रेम-साँचे माहि  
काचे नेम सजम निवृत्त कै डराए हैं ॥  
अब परि बीच खीचि बिरह मरीचि-बिम्ब  
देत लव लाग की गुविंद उर लाए हैं।  
गोपी-ताप-तरुन-तरनि किरनावलि के  
अध्व नितान्त वान्त-मनि बनि आए हैं ॥

इति श्री उद्धव-शतक

## मगलाचरण

जामों = जिससे । जाति = चली जाती है । विषय सासारिक = विषय वासनाएँ । विषाद = दुःख । चो = चाव, उत्साह । चाह = सुदर । गहिवो करै = ग्रहण किया करता है । कवित्त = काव्य । वर थ्रेष्ठ । व्यजन = व्यजनवण, भोज्य पदार्थ । रुचिर = सुदर । जागति = प्रज्वलित होती है । अनूप = अनुपम । जडता = माया-मोह निश्चेतनता । तोम = समूह । दहिबौ करै = भस्म हा जाता है । जयति = जय हो । रावरी = आपकी । सनेह = स्नेह, तेल घत । लाहिवौ करै = प्राप्त किया करें ।

१ जल जात = कमल । अध = नीचे का भाग । ऊरध = ऊपर का भाग । उमहि = उमग म भरकर । गाहि = पकडकर । वास = वासना = सूषने की इच्छा नैकु = थोडा । पाय परे उखारि = लडखडाकर गिर पडे । अभाय = विक्लता । हैक = दा एक । जगाइ = चतन्य । कीर = तोता । औचक = अचानक ।

२ भुज-बध = भुजावेष्ठन, हाथो को गले म डाले हुए । कदली वन = वेलो का वन । मतग = हाथी । मताए = मतवाले होकर । सौं = समान । नए सिर सौं = नतमस्तक होकर, फिर स । नीकै = भली भाँति । नह = प्रेम ।

३ पौरि = पौरी, द्वार, ड्यौडी । गुनन = सोचना । जौला = जब तक । अकुलानि = व्यग्रता । उठानि = प्रारम्भ । उमगि = उमडकर । भिची = रूद्ध हाना । है = होना ।

४ विधा = वेदना । अकथ = अकथनीय । अथाह = अगाध । प्रवीन = चतुर । सुकवीन = सुकवियो । बुझावन = समझावें । गहवरि आयी गयी = गला भर आया । भमरि = उमडकर । बैननि = वाणी । नैननि सो = नेत्रो से ।

५ प्रेमपग = प्रेम से युक्त । लाड = दुलार । सुधाकर = चन्द्रमा । प्रभा = जाभा । मढी = मडित । मूगनैननि = मूग के समान सुदर नत्र वाली गोपिकाएँ । वछारिन = नदी किनारे की हरी भरी भूमि । रग = उत्सव । रस = आनन्द-वेलि । रारनि = तवरार । बिपिन विहारनि = वदावन विहार । हीस = तीव्र इच्छा । दुयसावती = उत्तेजित करती । सुधि = स्मृति । सुख रासिनि = सुख का भण्डार । नित = नित्य ।

६ चलन न चरियो = कोई उपाय नही चलता । कोटिनि = करोडो । हारयो = धक गया । टारयो = इधर-उधर हिलना । टसकत = हिलता । गहीली = ग्रहण



करने वाली । चिमटी = पक्कड़कर, पीचने का औजार (वासुदेव और देवकी जिसके दो पक्ष हैं) कदत = निपलता है । वियेक = थक गए । आक = अक, अकौआ । घीर = क्षीर, दूध । विलसानि = सुखोपभोग । धँस्यो = घुसना । करेज = हृदय मर्तों = समान ।

७ रूप रस = गोपिया के रूप-सी-दय का मधुरामृत । अघात = तप्त हाना । हुते = होत । आंस = अश्रु । जुडात = शीतल हाना, तुष्ट होना । अँवा = मिटटी के बतन पकाने की कुम्हार की भट्टी । अर्पां सी घिरबो = जँवां की तरह चारा आर से जलना असह्य दाह का अनुभव करना । हर = देखना । हरिबोई = देखन की शक्ति को । हिरिबो कर = भूल जात है, खो जात हैं । जाम = प्रहर । घिरिबो और = घूमा करत ह ।

८ गल-गँल = गली-गली । गँल गँल = साय-गथ । गोरस = १ दूध, दही, मट्ठा २ इन्द्रिय-आनंद । काज = लिए । रिझाइबी = आकर्षित करना । नवेलिनि = नवयुवती, मुग्धाबाला । स्ममहार = परिश्रम अथवा रति आदि से उत्पन्न शिथिलता को मिटाना । कीबी = करना । मनुहार = किसी का मान छुड़ाने और प्रसन करने के लिए की गई अनुनय विनय ।

९ मोर के पखौबनि की = मयूरपखो का । छबीली = शोभायुक्त, सुन्दर क्रीट = क्रीरीट, राजमुकुट । माखन-सनेही = माखन से प्रेम करने वाली गोपिया, स्निग्ध = नवनीत । पटरस व्यजन = छ प्रकार के रसों से युक्त (मधुर, लवण, तिक्त, कटु, कषाय तथा अम्ल) । विरहानल = वियोगाग्नि । हरि = हरण कर । मुर-बद = देवगण । बलाइ = विपत्ति, बट । गोविन्द = गोपो का स्वामी । गुपाल = गायो का पालन करने वाला । बिहाइ = छोड़कर । त्रिलोक = तीन लोक ।

१० मजु = सुन्दर । मनि-पुजनि = मणि-समूह । गुजति = घुपुची । मिसाल = उदाहरण, उपमा । छावना = धारण नहीं कर सकती, अच्छी नहीं लगती । रतन-मै = रत्न जड़ित । अच्छ = अच्छा । अच्छ = अक्ष, आख । लच्छ-असइ = लाखवें बार के बराबर भी । काम धेनु = पुराणों के अनुसार कामधेनु चौदह रत्नों के साथ समुद्र-मथन के समय निकलती हुई गाय है जो प्रत्येक अभिलषित वस्तु प्रदान करती है । गूढ = गम्भीर छिपा हुआ । कनूबा = कण । विलोकन = देखने में । मलया = मलाई की मटकी ।

११ रतनावर = समुद्र, कवि का उपनाम । उमगत = उमड़ता है । विर-हातप = विरह की उष्णता । पचण = भयकर तीव्र । उसास = उच्छवास । झबोर = झझावत, आधी-तूपान । जगत = जगना, उठना । नेवट = नाविक । पचि = परिश्रम करके । गुन-पाल = रम्सी तथा पाल विवेक आदि गुण । अवगत = आकाश में उड़ जाना, लुप्त हो जाना । लगर = जहाज या नाव या रोकने का एक साधन । हगि डगमगावर ।

१२ सील सनी प्रेम भरी, आद्रंता-युक्त। सु-वात = सुन्दर बातें, सुन्दर वायु। पूरब की = पूव दिशा की, पुरानी। औरे = विलक्षण, अय ही। ओप = चमक, दीप्ति। दूगनि = नैन, दिशाए। मिदुराने = अधनिमीलित, धिरता, छा जाना। चमक = टीस एकाएक उठने वाला दद, बिजली की चमक। उर = हृदय, मध्य। घनश्याम = कृष्ण, काले काले बादल। अधीर = अस्थिर। जकुलाने = व्याकुल। आसाछन = आशा भंग हो जाने से, दिशाए आच्छादित हो जान से। दुरदिन = बुरे दिन, मघाच्छन दिन। दीस्या = दिग्ग्राह पडा। सुरपुरमाहि = देव लोक मे, आकाश मे। वारि = बालाएँ, वाटिकाएँ। हरियान त = प्रसन होने से, हरा भरा होने से। नीर की प्रवाह = अश्रुधारा। तीर = किनारा। अचल पवन। रसाने त = धीरे-धीरे बहने या टपकने से, द्रवीभूत होने से।

१३ कातरता = व्याकुलता, विफलता। अवाइ = अवाक, मौन। सरवे = खिसक गए। भूरि = अत्यधिक। भीति = भय। फनिद = फणीत्र, शेषनाग। करवे = कडक गए चटक गए। मुरराज = देवताओं का राजा, इन्द्र। घाए = दौड़कर जाना। धाम = घर। बिधि ब्रह्मा। हर = महादेव। वामनि = स्त्रिया। वाम = बाएँ।

१४ हेत = प्रेम। खेत = क्षेम। गापि = छिपाना, रखना। गमनी नही = जाना नही, चलना नही। करनी = हयिनी। प्रतीति वाज = विश्वास के लिए। करनी = काय। ताहि = उसके। घात = मौके की तलाश। बिमामी = विश्वास-घाती। छनौ नही = मत फसा। वारनि कितेक = कितनी बार। वारनि कितक करे = कितना निषेध करें। वारन उबारन = गण के उद्धारक। वारन = हाथी।

१५ पाँचा तत्त्व = पंच तत्त्व = क्षिति, जल पावक, गगन, समीर। सत्व = सार-तत्त्व (ब्रह्मा)। तत्त्व ज्ञान = सृष्टि विज्ञान ब्रह्मज्ञान वेदात् के अनुसार अविद्या का नाश और वस्तु का वास्तविक स्वरूप पहचानना ही तत्त्व ज्ञान है। श्रुति = वेद, निगम आदि। गायी = विस्तार से वणन करना। भेद = रहस्य। पच भौतिक = क्षिति, जल आदि सृष्टि रचना के मूल उपकरण। एक भाव = समभाव अहैता भावना। सचोप = मोल्पास। आप ही सौ आपुबी = स्वयं का स्वयं से ब्रह्म का ब्रह्म (जीव) से क्याकि दोनों मे एक तत्त्व विद्यमान है। विछोह = वियोग। ठायी = गहराई।

१६ दिपत = प्रकाशमान। दिवाकर = मूय। तुमसन = तुमसे। घाह = गहराई। असत = मिथ्या। पसार = प्रसार, सृष्टि। जागत = जाग्रतावस्था मे। पागत - लिप्त होना। परपचनि = प्रपच, सासारिक ज्ञानेत्। लहिवी कर = समझते है, प्राप्त करते है।

१७ टोक = रोव, बाधा। विशद = विशाल। इमि = इस प्रकार। अहरि = अँचकर सागर के समान चल, हृदय को स्थिर करके। हीतन = हृदय तल।

समन = समन करना, शांत करना । पुचारे = लेप, सात्वाना देना, पुचकारना ।  
नालिका = नली ।

१८ प्रेम नेक = प्रेम का व्रत । तिवारि = हटाकर । उर अतक तै = हृदय व  
भीतर से । निधान = सागर । जोति = ब्रह्म ज्योति । जोइ = देखकर । जरि  
वह = जल लेंगे, वष्ट सहन कर लेंगे । स्रवन = वान । सीख = उपदेश । सुधाकर  
मुखीनि = चंद्रमुखियाँ ।

१९ यत्र फूवा = मन फूवना, जादू डालना । मत्र चार प्रकार के बताय  
गये हैं—मारण, मोहन, उच्चाटण और वशीकरण । यहाँ अंतिम से अभिप्राय है ।  
वृक = वसक । भावनि = भम्वा । गहवर = अवरुद्ध, गह्वर । वदन = निवृत्तना,  
अभिव्यक्त होना । नन मग = नेत्र माग से । अगवानी है = पहले ही । प्राकृत =  
नैर्गमिक, स्वाभाविक । पानी = जल, अथु । पलट = परिवर्तित होकर ।

२० हियो = हृदय । मरस्यीई = निवृत्त पडना । रस्यीई = बूद-बूद टपकना ।  
रोम झिझरीनि सौ = राम-कूप से लोमछिद्रा से । जानन = मुख । दुवार = द्वार ।

२१ रससि = रिसती हुई । भूरि = अधिक । हुवास = इच्छाएँ । उरात  
हे = समाप्ती है । सीरे शीतल, सुखद । घातरि = १ धक्का २ सुयोग ।

२२ पन = प्रण, सकरप २ पण, सौदा । सुजस = मुक्तीति । उछाह = उत्साह  
सभार म = नियंत्रण म । छरकि = छलकता । २ हरे = धीरे धीरे । पजी = १  
ज्ञानोपदेश २ धन । तमाननि = यमुना के किनारे या = पवता पर मिलने वाला  
एक विशेष वक्ष । विरमानी = अटक गई फम गद । अस = और । करीरनि =  
करील, पत्तो रहित थाड़ी । झारि = झाड़ो ।

२३ गुमान = गम । घटि = घट । घटि जानि लग = कम जान पडने लग ।  
जाग के विधान = योग की त्रियाए जयवा अग -- यम, नियम, आसन, प्राणायाम,  
प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि । पमपारत ही = पैर पडते ही । पान  
मारतड = ज्ञान रूपी मूय । मान्स = १ मन २ मानस राकर । सरम = सजल ।  
सुहाए = शोभायुक्त । घनश्याम = १ वृष्ण २ मध ।

२४ छाप = ज्वित है । छाप = मुद्रा । छाप छाप एक = जिनके हृदय म  
एक ही ब्रह्म की मूर्ति अवित है । सान = मयुक्त, अभिभूत । सोई = वही । आनि  
= आकर । सिवाने = सीमा । सिथिलित = शिथिल, आलस्ययुक्त । गर = गला ।  
गरवाने = अवरुद्ध होना । पुनकि = प्रेम, हृप आदि से रामाचित ज्ञाना । पसीजि  
द्वित होना । पाम = पाशव, छाती । चापि = दवाकर । घयारि = हवा । वरमान  
= वरमाना, राधा का निवास-स्थान ।

२५ भ्व रही = आतप्रोन हो गई । बिलाकि = देपनर । ध्व रही = जो  
दिया, भूल गई । सेथि = मन ही मा हरहृगकर । तम्य = लिपि । तिन = उना ।  
ज्व रही = देग्र रही हैं ।

२६ शौरि शौरि = झुण्ड के झुण्ड। उच्चकि = उच्चकर। पद कजनि = चरण कमल। पजनि पै = पजा पर। पाती = पत्र। छोहनि = उत्कण्ठा। छवै = भरना।

२७ अपर = जोर। सनस = सदेश। रसना = जिह्वा। जोग = भावी मिलन अवसर। निरास वासना = निराशा का भाव, निगुण भावना। उमाहि = उत्साहित होकर। साहि = निश्चय करके, स्थिर करके। उत = उधर। कराहि = कराहना, पीडा स आह भरना।

२८ गरि गौ = गल गया। गुमान = गव। गुणने स = कुण्ठित हो जाने से। सिहरेने स = सहमे स। सप्त = शिथिल। सक्क = हक्के-बक्के स। सके = शक्ति। भमरे = घबराये हुए। भकुवान म = विक्त व्यविमूढ स, वीधलाये से। होले से = धीरे स। हल = कपित। हल = लाठी जादि का सिरा। इरो = मारे। हूल हूले स = लाठी जादि क गिरे का धटका (बाएँ से)। हरे से = लुट से, खोए स। हिराने स = खाए हुए से।

२९ नासिव = नष्ट करन। पारि = डालकर। मति = बुद्धि। रति माती = प्रेम मे निमग्न। उधिरानी = नष्ट हो गई। विपम = १ दुखपूण २ विपरीत। ताती = १ कष्टदायक २ तप्त। बरी = प्रज्वलित। बाती = १ वार्ता २ बत्ती। अलच्छ = जलस्य। दुरे = छिप गए।

३० विलस्यो रहै = आनन्द के साथ सलग्न रह, ध्यानावस्थित रह। ध्यान — योग क आठ जग म से एक जिसमे चित्त क प्रत्यय की धारणीय वस्तु के साथ एकाग्रता हो जाती है। सुजन्तरमुखी है ध्यान = बाह्य ध्यान को अन्तरमुखी साधना द्वारा अन्त करण म ले जाकर। हिय कज = हृत्कमल, जिस म ब्रह्म स्वरूप ज्ञान ज्योति प्रज्वलित होती है। जगी = प्रकाशित। मजु हिय कज जगी = हृदय म सुन्दर कज कली खिल उठी, महस्त्र कमल म ब्रह्म ज्योति जल उठी। धस्यो रहै = लीन रह। जड चेतन विलास = जड और चेतन का आनन्द, सायुज्य मुक्ति की जोर सकेत है, ब्रह्म और सृष्टि का सल। जाहत = दखत हो। विक्स्यो रहै = प्रगटित होता रह। विक्षोभ, ब्रह्म क हृदय म विक्षोभ हाने पर सृष्टि की निर्माण प्रक्रिया चलती है। छोहि = क्षुब्ध हाकर।

३१ समोई = व्याप्त। विभूति = वैभव, वह धूलि जिस योगी लगात है तथा सामान्य जना को लगाने के लिए ब्रह्म के प्रसाद रूप मे देत है। हू = भी। प्रभू तनि = प्राणिया म। पोई = गुथी हुई है पिरोई हुई हैं। माया = अविद्या। प्रपच = धाखा। भासत = प्रतीत होता है। प्रभेद = भेद, विभिन्नता, ब्रह्म एक जीव म तथा जीव जीव म जा भेद प्रतीत हाता है वह वास्तव मे भेद नहीं है अपितु भेद बुद्धि के कारण परिलक्षित होता है। फलकनि = टुकडे। भ्रम-पटल = भ्रम का आवरण, परदा।

३२ लुब्धो = देखो + घट = हृदय । वारिधि औ बूद = सागर और बूद, गह्वर और जीव, कृष्ण और गोपी । अत्रिचल = नित्य स्थायी । विनाप = रुदन । जुगती = उपाय, युक्ति । जूगावी = सन्निहित करो, एकत्र करो । छीन = क्षीण ।

३३ थहरानी = कापने लगी । घानहि = अपने स्थान पर । धिरानी = स्थिर हो गई । रिसानी = प्रोथित हुई । वररानी = बड़बड़ाने लगी । विलखान = विलाप करने लगी । विथकानी = शिथिल हो गई । सेद साना = प्रस्वेद युक्त हो गई । विललानी = तडपन लगी । मुछानी = मूख गई ।

३४ रस = १ आनन्द, प्रेमरस २ भस्म, पारद आदि औषधिया । प्रयागनि = १ प्रसंग, प्रेमालाप २ रासायनिक प्रयोग । मुघद = १ सुख देने वाले २ आराम देने वाले । जागनि = १ सयाग के २ रासायनिक औषधिया के योग के । उपचर = १ उपक्रम २ इलाज । चलावन की = १ चलान की २ प्रयोग करने की । मुल्शन = १ मुद्गर दशन २ विषम ज्वर की अचूक औषधि माने जान वाला चूण विशेष । मुधि सिराइ है = १ स्मृति भूल गए है २ ध्यान भुला दिया है । उपाय = १ उपचार २ उपाय । मुझाव = १ स्वभाव २ गति । लखि = १ देख कर २ परीक्षा करके । नारिन = १ स्त्रिया २ नाडी । अनारिन = १ अकुशल प्रेमी २ अबुशल वैद्य । पाती = १ पत्र २ चिट्ठी । विषम ज्वर = ज्वर विशेष, जिसके चढ़ने का समय नियत नहीं होता और इसमें तापमान तथा नाडा की गति परिवर्तित होता रहती है ।

३५ कवघी = कब घब । बरेजी = हृत्प । उराहनी = उलाहना, उपालम्भ । सलोना = लावण्य युक्त ।

३६ रजा = १ आनन्दित करना २ रजन करने वाले अर्थात् कृष्ण । नवनीत = मषयन । बिरद = यश । पाकसासन = इन्द्र । पासनि = दिशाभा म, पाशवों म । पांगुरी उमाहि = पसलिया उभारकर, पसली फुला फुलाकर । कभी = कभी ।

३७ कघा = अथवा । आनि = विपरीत । अनारी = १ अनाडी २ जो नारी की न हो । अयारी = अभेदता । बिलहै = विलीन हो जाएगी ।

३८ चोपि करि = सोत्साह । चढायी = आलेपन किया । तूरि = तुरही, सिपा । दरिबी कहौ = मलन के लिए कहत हो । रस रत्नाकर = १ रस के सागर कृष्ण २ रत्नाकर कवि का उपनाम । स-नेह = १ प्रेमसहित २ तेल लगाकर । निघार्यो = मुलसाया । ता = उन । वच = वेशा का । अरविन्द = कमल । जटा जूट बरिबो यही = जटाआ ना जूटा यनावर लपटन के लिए कहत हो । काक चचुवत = वीए की चाच के समान (समद्विबाहु त्रिभुजाकार) विवृत आकार वाला । ताइ गम विण हूण । धीर-नीर = धय रूपी नीर । ब्रजचन्द = चन्द्रमा की तरह ब्रज का शीतल करने वाला अर्थात् कृष्ण ।

३६ चितामणि = चितामणि एक कल्पित रत्न है जो समस्त अभिलाषाओं को पूरा करने वाला माना जाता है। यहाँ पर सम्पूर्ण कामनाओं को पूरा करने वाले श्रीकृष्ण से अभिप्राय है। पँवारि = फेंककर। धूरि धारनि मे = धूलि की धाराओं में। काँच मन मुकुर = मन रूपी काँच का दण्ड। सास = बुझाने को। वयारि भखिबौ = वायु का भक्षण करना, प्राणायाम करना। रूप रस हीन = अरूप, निगुण। निरुपि चुके = निरूपण कर चुके। पैय = पाइए। त्रिकुटी दोनो भौहो क बीच कुछ ऊपर का स्थान, त्रिकुट चत्र का स्थान।

६० जोग = १ याग २ सयाग। दरस = दशन। दीयो = दिया। दरिब = नष्ट करने की। टूक टूक - टुकड़े टुकड़े। चुकि हूँ = भूलकर भी। बँन पाहन = बचन रूपी पत्थर। उजारयो = उजाड़ दिया है।

४१ बुझाएँ = समझाने से। बया = व्यय। घावकरि = घाव करके। लौन = नमक। सौ = सा। कूटि = कूट कूटकर। लुनाई = नमक। लाइ = मिलकर। सुघाई = सीघापन।

४२ पीजर = पिजड़े में। कानि = मयादा। गुन = १ गुण २ रस्सी। लगर = नाव या जहाज को रोकने वाली भारी लोहे की बनी हुई वस्तु, बध्न। टेक करि = प्रण करके। सास भूटि = सास रोककर, प्राणायाम से आशय है। बानक = वेश, माग। मुक्ति मुक्ता = मुक्तिरूपी मोती। माल = तत्व। मानिक = माणिक्य। वारि चुकी = यौछावर कर चुकी।

४३ बादि = व्यय। गुनाकर = १ गुणों का समुद्र २ रज्जु राशि (रस्सी) मग = माग। बय्यार = माग में लूटने वाले, डाकू। टाल = टोली। लोल = चंचल उत्सुक। मुक्ति = १ मुक्ति २ माती। बधुवर = श्रेष्ठ दुलहिन, बूबरी से आशय है। ऊवर भई = शेष बची रही। मधुपुर = मयुरा।

४४ परतच्छ = प्रत्यक्ष। प्रमान = प्रमाण, प्रमाण चार प्रकार के मान गए हैं — प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। ससा मिंग = खरगोश का सीरा, अस्तित्व हीन वस्तु। भ्रम भौर = भ्रम रूपी भवर। भूप = राजा। अलख = अलक्ष्य, अरूप-रूप रहित निराकार।

४५ सखात = दिखाई देत है। ब्रह्मजोति = योग साधना के अतगत पंचाम्नि। जगाइ = जलाकर। तात्थी = उससे। सरि है = सम्पन्न होगा। अनग = कामदेव, कामदेव के सदृश्य सौन्दर्यशाली श्रीकृष्ण। साधि = साधना करके। साध = कामनाएँ। अग-रहित = कामदेव, निराकार ब्रह्म। अराधि = उपासना करके।

४६ बदन = मुँह। गोवन गवाइहै = गोधन के गीत गवायेगा, दीपावली के दूसरे दिन गोवधन पूजा होती है तथा स्त्रियाँ और पुरुष मण्डली बनाकर गोधन के गीत गाते हैं। यह प्रथा ब्रज में आज भी प्रचलित है। भोर = सरल स्वभाव वाला। बराइहै = दूर चरेगा।

६७ वसन = वस्त्र । वामर = दिन । रमावै = रगना, रग लगाना । भुक्ति = भोग, विषय भोग ।

४८ समाधि = याग का चरम फल, इस अवस्था में योगी प्रायः पचासन लगाकर नेत्र मूदकर बैठ जाता है । उसका शरीर गतिहीन रहता है और ब्रह्म में अवस्थिति हो जाती है । यह चार प्रकार की कही गई है = १ सम्प्रज्ञात २ सवितक ३ सविचार, ४ आनन्द । निपट = नितात । निबेरी = निवृत्त, मुक्त । इतधौ = इधर को । साधना = शासन । जभा = पूजा, धरोहर । सुरपति = इन्द्र । कमेरी = दाम्नी ।

४९ अपबरग = मोक्ष । आन = लाना । सासनि = कष्ट ।

१० जग सपनी = अद्वैत वेदात्त के अनुसार जगत स्वप्न है, मिथ्या है । परत = प्रतीत होता है । वयात हा = वक रहे हा । जिमि = जिस प्रकार । जकी = वकना, गट लगाना ।

११ वाट = व्यथ । मूधोवाद = सीधा भाग । काय - काया, स्वरूप । नसावै कौन = नष्ट कौन कर । ज्याति ज्वाल की ग्रह ज्योति की जग्नि में । जगाजग = चकाचौध ।

१२ वाही = उसी । मरीच = किरणें । भानु = सूर्य । जुहारि = प्रणाम करक । विरचे = बनाए हुए । बिगचि = ब्रह्मा, विधाता । सास = शक्ति । चरिबो = आचरण करने को ।

१३ प्रेम रताकर = १ प्रेम रती गभीर एव अथाह ममुद २ कवि का उपनाम है । मीननि = मछलिया । इहि = इस । भव = ससार । गोपद = गाय के पुरात बना हुआ गदा । मीच = मृत्यु । विनु मीच = अकाल मृत्यु । बलाय = विपत्तिया । निकाय = ममूह । धरक = डर, आशका ।

१४ जमानै = समूह । भीति = भित्ति, दीवार । छात = छनें । घान = कष्ट ज्ञान छेम = ज्ञान क द्वारा कुशल मंगल

१५ करकपो = कडवकर दूटना । भगीही = भगवा रग की । भेप रव = वस्त्रा की ग्या । रचिहै = रच हुए ।

१६ उमीर = पस । पुलकावलि = रोमराधि । सीरो = शीतल । उसास =

१७ चमक = १ टास २ प्रकाश । अवरौतगो = अवरुद्ध करेगा । माहगी = शाभा दगी । मदत = घोखा दवर मूल्यहीन वस्तु का मूल्यवान बताकर जबरदस्ती दूसर का सापना ।

१८ गिरि-सू गनि = १ पवत का चाटिया, २ मल्ल, महत्त्वा, यागा आदि । तिहारी = तुम्हारी । वता = १ तिरणें २ चतुराई । घटिहै = १ हटगी,

२ चलेगी। तन-तूल = तिनके के बराबर भी। रसना = जिह्वा। विहाइ = छोड़ कर। घनश्याम = १ कालेबादल २ कृष्ण।

५६ ध्यास = १ ध्यान २ श्रीडाए। अनय-रसवारे = १ अनय-रसिन श्रीकृष्ण २ अयधिव रमपूण। अघारे = अखाडा—यहा मचित होने स अभिप्राय है।

६० मुनी-गुनी समझी = श्रवण मनन और चिंतन कर। जिती = जितनी। कविताई—कविता, अथहीन वाते। त्रिकाल - तीन काल = भूत, वतमान तथा भविष्य। त्रिलोक = तीन लोक = स्वर्गलोक, मत्स्यताक तथा पाताललोक। आनै = स्वीकार करना। आन = जयवात। त्रिदव = तीन देवता— ब्रह्मा, विष्णु महेश। प्रतीति = विश्वास। त्रिवाचा = त्रिवचन, बल देने के लिए, किसी बात को तीन बार कहना। जी = हृदय।

६१ कैं = करक। गिलि जाइगी = निगला जायगा। दरंगी = मलेंगी। पाचि-आचि = पचाग्नि—एक प्रकार का तप जिसमें ग्रीष्म ऋतु में तपन सूय के नीचे बटकर योगी अपने चारा आर आग जला खता है। झर = जलन। एती = इतनी।

६२ लकनि = कमर में। मलि लह = मल लेगी। छार = राघ भस्म। ललकि = उत्साह से भरकर। घनेरे = घना, गम्भीर। घाम पाला = घूप जीर शीत, यहा कष्ट और विपत्तियों स अभिप्राय है। इ = भी। ताकी = उमका, योग साधना का।

६३ साधिह = साधना करेगी। अराधिहै = आराधना करेगी। आधि = मानसिक व्यथा। व्याधि = शारीरिक कष्ट। निरहैह = निवाह करेगी। पट = परदा, वस्त्र। मिलहै = तुलना करेगी। चाय = चाव।

६४ मधुपुरियान मयुरावाले। अगुन = निगुण। बंद = गाठ। निरवास = मुलबाना। पाय = १ सत्य २ तप। नखिया = नाखून बुद्धि। मोर-बारो = मुकुट धारण करने वाला (श्रीकृष्ण)। मोर पखिया = मयूर पख अथवा मयूर पख की आखें, ज्ञान की बनावटी आखें।

६५ डरकि = डलरना। परकि = द्रवीभव होता। कियियानि = जगलें। लेखते = देखते। त = से कहुधा = किसी स्थान पर। बग्वान = वणन।

६६ चपल = चचला। चितौनि = चितवन। चुवान = टपका पडता। पारे न यसहै = वश नहीं चलेगा। हिरहै = खो जाएगा। टिटेहरी = जल के किनारे बसने वाली एक छोटी चिडिया जिसका सिंग लाल गदन मफेद पख चितववरे, पीठ खरे रंग की दुम मिल-जुले रंग की और चाच कानी होती है। तनव = जरा भी। अगस्त - अगस्त्य = ऋषिबिशप = इनके पिता का नाम मित्रावरुण था, उन्होंने उवशी को देव काम पीडित हो वीरपात किया, जिममें अगस्त्य का जन्म



हुआ। तपस्या के बल से इहोने एक ही घूट में सागर का मारा जल पी लिया था।

६७ मोड़ = छिपाकर। भडग = भाडपत। टाय-टाम = बक्वास। मुह चग = डफ की तरह एक बाजा, व्यय की बातचीत। सास रोकिबै = सास रोकना = १ मरने को २ प्राणायाम करने को। जतग = ऊचा। सतसग - अच्छा साथ = यह कुमग के प्रति व्यंग्योक्ति है।

६८ मुराइ भुलावा देकर। नाप = नाव। नीकै = भली प्रकार। यारी करी = अलग कर दिया। बूल = किनारा मर्यादा। पारि = डालकर। पराने = पलायन कर गण। पतवारी = नाव के पिछले भाग की जार वा एक अंग जो कि तिकोने आकार का होता है। यह आधा जल में और आधा बाहर रहता है तथा बाहर वाले भाग में एक डडा पडा रहता है जिसे पकडकर नाव घुमाई जाती है। गुनवारी = १ रम्पी २ गुणवान कृष्ण। कुठारी = कुल्हाड़ी।

६९ पाल = एक लम्बा चौडा कपडा, जिसे नाव के मस्तूल से लगाकर इस लिए ताना जाता है ताकि उसमें हवा भर जाये और नाव को आग बढन में सहायता मिले। पतवारी = तलवार। पति = मर्यादा। पतवारी-पति = मर्यादा का रक्षक (कृष्ण)। केवट = मल्लाह। परान्घी = भाग गया। कूब = कूबड। तूबरी - तबी तरने में सहायक होती है। निरयेन = १ निर्गुण २ रस्सी रहित। लगार = रस्सी, बधन। पारी = डाल दी है। तरनी = नाव।

७० तपेला = घट्टी। अपेल = मर्दव बना रहने वाला। रेल-गेला = भीड़ भाड़।

७१ एत = इतने। भाव = वारी = गुण अपवा घम वाली, अनुभूति में जानी जान वाली। भूजगनि = सपों की टेढ़ी गति, बालों की, श्याम रंग वाली की। टेक = प्रतिज्ञा।

७२ दोनाचल = द्रोणाचल, पर्वत विशेष। छिगुनी = सबसे छोटी उगसी। छेप छय = रक्षा का छय। छिति = पम्बी। रच = घोडा। राचे = अनुरक्त होने पर। पानि = हाथ। परसि = हरश करवे। जानै यह = बया जाने। अजान = नासमझ। गुजान = चतुर। पुह = भारी। प्रेमाचल = प्रेमपर्वत।

७३ मुहर लगाइ गए = रक्षित कर गए। साती = सम्पत्ति। बियो = दूररा। घूनी = वण्टपूष। जनम सपाती = जन्म के साथी। पापन = स्थापना के लिए।

७४ गुघर = गुदर। मलाने = लाजप्ययुक्त। बमीठ = दूत। जदेग = गन्धेस। पूने किगे = उत्साह में घूमना। बचर = पागरी, घूनी। रषर = जग, पाडा। बराण = लज्जन होता बनना। रगिन गिरोमनि = गवभण्ट गतिव, कृष्ण। गूर = दूर। पठाए = भेजे हुए।

७५ सरोजनि = कमलो । मकरद = पराग, पुष्प रस । ढरारै = बहता है । सचि = एकत्र करके । पारै है = डालने है । गार = गिरता है । मधुप = १ ध्रमर २ उद्वव । नेह = १ घत २ प्रम । अछेह = असह्य । बगारै है = फलाता है ।

७६ अमगुन = अपशकुन । कटाई नाक = लक्ष्मण द्वारा सूपणखा की नाक कटाई । बरि कूब = कूबड करके । फेरी फाटी है = पुन फट पडी है । पारेखी = खेद । पाकी = पक्की, निश्चित । रगभौन = रग महल । पाटि देत = बराबर कर देत है ।

७७ राइ = राजा । पच्छवारे = पक्ष वाले । लाइ = अग्नि । लाई = लगाई । जवलनि = स्त्रिया । ढरारे = कृपालु । ढार = साचा । ढारे = ढले हुए । अकूर = १ जो निदय न हो । २ एव यादव विणेष ।

७८ छतीसे = छतीस विद्या जानन वाला, घूत । छलिया = छली । वीस विसै = निश्चय ही । वीर बामन = बामन भगवान । कलाच = अशभूत, अवतार, छलाग । साढे बाइत = बहुत छोटा । जोग छठ-आठ = पडाष्टक योग ज्योतिष के अनुसार वर की राशि से यदि क्या की राशि छठी या आठवीं हा तो उसे पडाष्टिक योग कहते है । इस योग का विवाह वमनस्पर्कारी माना जाता है । हरी = प्रेम । काच = योग । तीन गुण = सत्त्व, रज, तम = त्रिगुण । तीन तरह = तितर बितर होना । तीन-पाँच = चक्कर मे डालन वाली बातें करना ।

७९ प्रससि = प्रशसा करके । मुष्टिक चनूर = मुष्टिक ओर चाणूर नामक दो यादवा, जिनका कृष्ण से मल्ल युद्ध हुआ था । मल्लनि = योद्धाओ, पहलवानो । कसकायी = पीडा उत्पन्न हुई । सुख मूरि = सुख की जड, व्रज मे कृष्ण की उप स्थिति से आशय है । गाज = ब्रजाघात ।

८० जोग मतर = जोग मंत्र, मतर शब्द से जादू-टोन की ध्वनि निकलती है । विलग = पथन । चेतवारे = सावधान । प्रानमूरि = प्राणाधार । मुकुर = दपण ।

८१ व्रज जीवन = कृष्ण । जच्छनि = आघात । उधारि = खोलकर । लच्छ = देखो । लाग = अनुरक्त है । जीहा = जिषा । समीहा = समीक्षा ।

८२ काह भाय = किसी भी तरह । उमहन = उन्नत होना । हुती ही = धी । जुक्ति = युक्ति । भूरि = प्रचुर । लहन = प्राप्त करना । उगहन = वसूल करना ।

८३ पुरती = पूरी पडती । विरीट काज = मुकुट बनाने हेतु । विरच = टुकडे । बुभायकी = बुरे भाव की । भावते = पसन्द आत । वीरति-बुमरि = वपमानु सुता, राधा । दूवरी = दुबली । पताहू = पुन वधू ।

८४ हरि = १ कृष्ण २ विष्णु । पानिप = १ काति २ जल । भाजन = १ आधार २ बरतन । दगवल = जाखी के कोर । तपान = वंग पूवक । त्रिलाव = स्वर्ग, मत्य, एव पाताल लोक । ओव मडल = ग्रह तथा नक्षत्रा वा मडल ।

ब्रह्मद्रव=१ कृष्ण की काति से युक्त अशुजल २ गंगा की धारा । हर=शकर ।  
हरगिरि=कैलाश पर्वत । पैठन=प्रवेण करने के लिए । आधे कान=रचमात्र भी ।

८५ वसिर्य=वैसी ही । पुरंदर=इंद्र । कृपा=विपरीत लक्षणा से राप ।  
बलि=मछी, सखा । नातरु=नही तो ।

८६ बिलखाइ=बिलखकर । गोधन=गोधन । चख=नेत्र । निहोरि=  
आग्रह करे । दमरति=जगमगाती हुई । दिव्य=भव्य । इद्र-शोप लोपक=इंद्र  
के क्रोध को लुप्त करने वाला ।

८७ विपिन=वन, वनम्यली । वगन्तिकावली=बसन्त ऋतु की शोभा ।  
पियराने=पीले पडे हुए । वौर=१ वौर से युक्त २ पागल । बंद-समूह ।  
लसत=शोभिन होत है । रसान=१ आम २ रसवती । पिक्=कोयल ।  
वाग्नि=१ कडिया, २ बालाण । चवाव=चचा चुगली । पतझार=१ पत्ता  
वा झडना २ लज्जा न रहना । तरति=१ वृक्ष २ स्त्रिया । बहरि=बीहड़ ।  
वतास=वायु । काम त्रिधि=कामदेव रूपी विद्याता । वाम=विपरीत । बला=  
सष्टि । मीन मेप=१ त्रुटि निकालना २ मीन तथा मेप गणियों मे ही वसत  
ऋतु होती है ।

८८ जीवन=१ जल २ प्राण । दीन=१ उरलासहीन २ दुग्धित । दीर्घे  
=दिखलाई पडता है । चबाई बान=१ तीव्र रागु २ निंदा री बातें । तार्यो  
अग=१ अणों को जलाने वाला अर्थात् मूय २ जिमका अग जल गया है अर्थात्  
कामदेव । विद्याता=१ स्वामी २ व्यवस्था करने वाला । टमक=अभिमान ।  
बगर बगर=घर घर । वपभानु=१ वष राशि का मूय, वष राशि म तीव्र गर्भों  
पवती है २ राधा के पिता के नाम जा बरमाना व राजा थे ।

८९ पुरया=पुरवैया हवा । पीव-पीव=पी-पी, प्रियतम प्रियतम । चपना  
=विजली ।

९० ललात=१ घिनना २ ललचाता । वज=रमल । दिघ-माघ=  
दशा की अभिलाषा । विरह विधु--विरह रूपी चंद्रमा । घालत घनी रहै=  
गहरी चोट मारता रहता है । पत्रवरन=कामदेव । उमड ठनी रहै=उमडत रहत  
है । फरद=पट्टा, नेछा । दवामी=स्वायी ।

९१ रीत=यात्री । नियम=तरकम । कुमुमापुध=कामदेव । हुरे=छिपे ।  
सातै=इसलिए । चारो=उपाय । मानम=१ मानसरोवर २ हृदय । पाता=  
तुपार । आस १ दिशा २ आशा । बारि=१ जन २ एव मार । जनत=  
अयत्र । निगतनि म=दिशाओ म ।

९२ चांगि चांगि=दवा दमागर । टिठुर=पीत । पटाम=पर्व, आवरण ।  
अनिता=१ भ्रमरिया २ सप्रिया । मनी=दुबी । साधत=१ कृष्ण २ बगत ।

९३ मा माहिनी=मात का मातन मानी सापिया । मलीत=गनी । जाम

==जाता, ज्ञान योग आदि के प्रपञ्च। पैरिबी==तैरना। प्रमानत==सिद्ध करते हो। प्रतच्छ==प्रत्यक्ष।

६४ विहात==व्याकुल। सिधाइयो==चले जाइए। सिरताज==शिरोमणि, कृष्ण।

६५ जनि==मत। हा-हा खाइ==विलयकर। त्रास==कष्ट। सास तीजिमी==सास लना, चर्चा करना।

६६ ताजन==ताडना, कष्ट। रस==आनन्द। परिचारिका==दासी। विवेक==पान, यहाँ छल कपट की बातों से आशय है।

६७ जित तित==जहाँ-तहाँ। अरति==पीडा। गज==घुघुची। सजाव दही==जामन लगाया हुआ दही। मही==मट्टा। दलकति==कापती हुई। पासुरी==पतलिया। पीत पट==पीताम्बर। नवनीत==मखन। सुरवारि==सुरीली।

६८ नाइ==झुकावर। भापन की==बहन की। महि जात है==भूमि पर गिर जात हैं। ठाह जात हैं==स्थिर, जडवत हो जाते हैं।

६९ ब्योत==उपाय। फुरति==फूटती। हीलत==हृदयतल। लागे==स्पर्श होन ही, लिखत ही।

१०० अलापि==वक्त हुए। हलवल से==हडबडाए मे। सुदेश==स्वदेश (भ्रज)। अवरिल==चगातार। चदहास==तलवार। चल-अचल==जड चेतन।

१०१ गरवाई==गुरता। इमेव==अहंकार। हग्वाइ==हृत्वापन। बहिराई कं==निवासनर। तमाई==१ तवापन २ तमोगुण। विनसाह क==नष्ट करके घोंट=घोवती। घमाइ==फूववर। कोदनि==दिशाभा। गोप की बघूटी==गोपिणी। मार=सारण किए हुए। पार=पारा=एक चञ्चल पदाथ। मुरवाइ व=छिन्ननर, डालकर।

१०२ सारथी==रथ चलान वाला। नीठि==कठिनता स। दीठिन==दष्टि को। बून=निनास। कलिनी=यमुना। दएँदी=दुर्गामी। रिमुरि=फफुवर।

१०३ ह्राम=हताशा। उन=कम। सून=शून्य। अरथ-उदास=अथ शून्य। गोन=गमन।

१०४ कचुली==अशुद्धि-कानिमा, पारे के मल कंचुल कहे जात हैं। मरि==ब्रह्मी। गुभ-भीली==कल्याण की तरलता स युक्त। जोगनि==रामायनिक सपाण। भावि=भावना, दोष दूर करने तथा गुण-वृद्धि के लिए कथाय, म्वरस आदि क द्वारा जा घोटने की क्रिया हाती है उसे भावना कहते हैं। अमित==अव्यधि, पदपष्ट। प्रमान=मात्रा। पट-अतर=हृदय मधी पडे म। धूम=धुआ। रमापन=भीरधि।

१०५ नवाए=झुकाए। गुन-गीरव=गुण की गरिमा। गरव-गढी=गर्व भा विरहा। नतल म=नस शरर। त्मरी=तूबी। गुदटी=चिपटे, पट-

पुराने कपडे  
 १०६ पौरि = मुख्य द्वारों की दरियाँ हैं = दया लेते हैं। आनन = मुख।  
 उकसाँ हैं = ऊपर बरके। मोहें = सामुद्र कर्जें। निचोह = नीचे।  
 १०७ चकात = चकित। सायत = पोछते, मम्मालत। बहोलिनि = वृत्तों की  
 बाँह। राजें = सुशोभित है।  
 १०८ रज = धूल। बलवीर = श्रीकृष्ण। सद्य = ताजा। पुहुभी = पथ्वी।  
 बाँछि = गोद में।

१०९ तार = तारतम्य। सरि लेन देहु = शात हो जाने को। पुरन देहु =  
 स्फुरति होने दो। नमुक = घोडा। कढत = बाहर आत हुए।  
 ११० हिरानी = खो गई। दाम्न = भीषण। दररनि = धक्के में, टकराने  
 में। झार = कपट।

१११ निपेघन = १ वज्य अन्तय २ मना करना, सगुणोपासक को मना  
 करना। विधान = १ वक्तव्य २ निगुणोपासक का प्रतिपादन करना। काली =  
 कालियनाय। दवानल = दावानि। सिवान = सीमा। अघर = ओष्ठ। जाले  
 = पपड़ी पड गई, सूख गए। कसाले = कष्ट। लाले पर प्राण के = प्राण रक्षा  
 कठिन हो गई।

११२ द्रव्य = पदाय। बारिद = मेघ। बारि = जल। अचयो = १ पिया  
 २ आचमन किया। उपच्यो = उलटना, उलटी होना। हरि हरि = १ धीरे-धीरे  
 २ कृष्ण-कृष्ण। बरि-बरि = जल-जलकर।

११३ पन = १ प्राण, नान तथा योग का प्रचार करने का प्रण २ सोदा,  
 सूक्ष्म। तुल्यो = तुल सका। साठी = १ सरकण्डा २ पूजी। हिरायो = खो गया।  
 नाठी = नष्ट हो जाने पर। माठी = मट्टा। आँठी = दही का थक्का। पूरि =  
 रमना, मलना।

११४ जोप = यदि। वट = वक्ष विशेष पुराणों के अनुसार वटवक्ष का नाश  
 प्रलय में भी नहीं हाता। भूपति = राजा। पुयपाय = पुण्यजल गगाजल।  
 ११५ एतो = इतना। स वेदन = दुख के साथ। बिलय = बुरा, दुख।

धुरीन = धुरी, आधार।  
 ११६ कुटीर = कुटी। रम्य = सुंदर। तीर = किनारा। रौन = रमणीक।  
 चितावन = सजग करने, चेतावनी देने। इतै = यहाँ।

११७ भाठी = भट्टी। लुकाठी = जलता हुआ कपडा बधी लकड़ी। लाग =  
 १ धातु को गलाने हेतु दिया जाने वाला ताला पुट। २ सम्बन्ध। मुहाग =  
 १ सोभाग्य सुहागा। अदाग = शुद्ध। सुवत्त = सुंदर वताकार। परि = पकड  
 कर। मरीचि = किरण। लाव = लो, लगन। लाग = प्रेम। तम्न = तम्न, प्रजड  
 से आशय है। तरनि = मूय। वाति मनि = सूयकान्तमणि।

०००

उद्वय शतक





